# चेतना विकास मूल्य शिक्षा

## कक्षा - 5

संरक्षण एवं मार्गदर्शन

ए. नागराज
प्रणेता
मध्यस्थ दर्शन (सह–अस्तित्ववाद)

लेखन
साधन भट्टाचार्य
श्री राम नरसिम्हन
कुमार संभव, सोम त्यागी
बी.आर. अग्रवाल, अंजनी कुमार
श्रीमती सुवर्णा योगेश

## प्राक्कथन

मानवीय शिक्षा का प्राक्कथन एक आवश्यकता के रूप में हमें महसूस हुआ, क्योंकि यह पाठ्यपुस्तिका का उपक्रम पहली कक्षा से प्रस्तुत किया गया है। क्रम से परंपरागत होने तक सिलसिला बना ही रहेगा। सह अस्तित्व अपने स्वरूप में व्यापक वस्तु में ही सम्पूर्ण एक–एक वस्तु जैसा परमाणु, अणु, ग्रह, गोल, सौर व्यूह, आकाश गंगा। डूबी, भीगी, घिरी होने के आधार पर नियंत्रण, क्रियाशीलता और उर्जा सम्पन्नता प्रत्येक वस्तु में नित्य प्रमाण के रूप में देखा गया है। साथ में यह भी समझा गया है कि व्यापक वस्तु में समाहित सम्पूर्ण एक–एक वस्तुओं की अविभाज्यता नित्य वर्तमान है। यही सह–अस्तित्ववादी विश्व–दृष्टिकोण का मूल रूप है। ऐसे सह अस्तित्व नित्य प्रभावी रहना स्वाभाविक है।

सह अस्तित्व को ध्यान में रखते हुए प्रथम कक्षा से अर्थात् अक्षराभ्यास से चलकर शब्दों का अभ्यास और शब्दों के अभ्यास से अर्थ का अभ्यास, अर्थों के अभ्यास के तात्पर्य में हर शब्द किसी वस्तु का, क्रिया का अथवा फल–परिणाम का नाम है। ऐसा अर्थ इंगित होना ही शब्द से अर्थ समझा गया है इसलिए अर्थबोध करने के उपक्रम में शिक्षा विधा को अध्ययन के रूप में प्रस्तुत करने का सौभाग्य प्रस्तुत हुआ। यह पठन विधि से अर्थ बोध तक पहुंचने का मार्ग प्रशस्त हुआ। इसे प्रस्तावित करना इसलिए आवश्यक समझा गया कि मानव सह–अस्तित्व विधि से ही समुदाय चेतना से मानव चेतना में संतुलित होना है। मानव चेतना का प्रयोजन, समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व पूर्वक जीने का प्रमाण है। इससे अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था की पहचान होना स्वाभाविक है।

यह तो सटीक है कि विगत विधि से जो पाठ–पठन का लक्ष्य था, उसे आगे पढ़ाने के जिन भी उपायों को खोजा गया है, वह सब सार्थक है, मूलतः मानवीय शिक्षा के अभाव वश सामुदायिकता, मतभेद, साम, दाम, दण्ड, भेद, परस्पर समुदायों की निहित अतिशोधों का विश्वास प्रयोग हो चुका है। इन सब अभिशापों से मुक्ति पाने की अकांक्षा मानव में निहित होना भी पाया गया। इसलिए मानवीय शिक्षा का निश्चयीकरण आवश्यक समझा गया है। इसे क्रियान्वयन करने की क्रमविधि से प्रस्तुत किया। मानवीय शिक्षा में मानव का अध्ययन प्रधान उद्देश्य को सार्थक बनाने के क्रम में प्रथम कक्षा से ही सूत्रपात रूप में मूल्य संबंधी और शरीर के अवयव संबंधी शब्दों का अधिकतम चयन किया गया है। साथ में परस्पर मानव संबंधों से संबंधित शब्दों का चयन किया गया है। इसे हर बालक अथवा किशोर आसानी से पहचान पायेगा। ऐसी हमारी स्वीकृति है। यह सार्थक और सफल होना पाया गया है। भविष्य में मूल्यांकन होता रहेगा। इस विधि से सर्व शुभ होने की कामना है।

ए. नागराज
प्रणेता
मध्यस्थ दर्शन (सह–अस्तित्ववाद)
श्री नर्मदाचंद, भजनाश्रम, अमरकंटक
जिला अनूपपुर (मध्यप्रदेश)

## भूमिका

विज्ञान शिक्षा से छात्र–छात्राओं एवं युवाओं में तर्क शक्ति का अभूतपूर्व विकास हुआ है। जिससे आस्था (बिना जाने मान लेना) की प्रवृत्ति में कमी आई है। अतः परंपरागत शैली जिसमें यह करो, यह न करो अथवा ''ऐसा जीना चाहिए'' आदि उपदेश विद्यार्थियों में अब प्रभावशाली सिद्ध नहीं हो पा रहे हैं। ऐसे में परिवारोन्मुखी, समाजोन्मुखी शिक्षा के सार्वभौम स्वरूप पर चिंतन की आवष्यकता है।

यूनेस्को ..................... द्वारा अपेक्षित शिक्षा के चार स्तम्भों में मुख्य स्तम्भ ............. अर्थात् ''साथ–साथ जीना सीखना'' पर जोर दिया है।

मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार ने मानव मूल्य शिक्षा हेतु निम्न मार्गदर्शन दिया है –

1. पाठ्यक्रम किसी भी प्रकार के अंधविष्वास, कर्मकाण्ड व पूजन पद्धति से मुक्त हो।
2. पाठ्यक्रम रहस्यवाद, सम्प्रदायवाद व व्यक्तिवाद से मुक्त हो।
3. पाठ्यक्रम ''करो न करो'' आदि उपदेश न होकर तर्कपूर्ण हो, तर्कपूर्ण ढंग से इसका प्रयोग एवं विश्लेषण द्वारा परीक्षण कर सकते हो।
4. पाठ्यक्रम को आचरण में प्रमाणित किया जा सकता हो।
5. पाठ्यक्रम दर्शन आधारित हो।

आधुनिक शिक्षा को रोजगारोन्मुखी ही नहीं बल्कि परिवारोन्मुखी, समाजोन्मुखी भी होने की आवश्यकता है, ताकि हर परिवार समाधान, समृद्धिपूर्वक जी सके। समाधान का अर्थ मानव संबंधों में परस्पर तृप्ति एवं प्रकृति के साथ संतुलनपूर्वक जीना है। समृद्धि अर्थात् अभाव–मुक्त जीना इस आशा की पूर्ति के लिए मानवीय मूल्यों के शिक्षक की आवश्यकता महसूस की जाती रही है।

मध्यस्थ दर्शन (सह–अस्तित्ववाद) उपरोक्त सभी कटौतियों को पूरा करता है, जिसका परिचय ''जीवन विद्या शिविरों'' के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। मध्यस्थ दर्शन से विस्तृत चेतना विकास मूल्य शिक्षा मानव में पाँच सद्गुणों को सुनिश्चित करती है :–

1. स्वयं में विश्वास
2. श्रेष्ठता का सम्मान
3. प्रतिभा एवं व्यक्तित्व में संतुलन
4. व्यवसाय में स्वालंबन
5. व्यवहार में सामाजिकता

आज धरती एक गाँव .................... हो गयी है। अतः विश्व शांति हेतु वैश्विक नागरिक ...................... अर्थात् सार्वभौम मानवीय आचरण को पहचानने की आवश्यकता है। चेतना विकास मूल्य षिक्षा के प्रकाष में सार्वभौम मानवीय आचरण, सार्वभौम मानवीय शिक्षा, सार्वभौम मानवीय व्यवस्था, सार्वभौम मानवीय संविधान का व्यावहारिक स्वरूप व्याख्यायित होता है। साथ ही ''मानव में समानता'' व धर्म निरपेक्षता का व्यावहारिक स्वरूप प्रकट होता है जिससे ''मानव जाति एक, मानव धर्म एक'' पूर्वक जीने की राह प्रषस्त होती है।

विश्व के इतिहास में शायद पहली बार हुआ है कि संपूर्ण दर्शन को प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर पहुंचाया गया हो। राज्य शासन ने कक्षा 10 वीं तक अध्ययन करने वाले सभी बच्चों को सहअस्तित्व का महत्व इस दर्शन के माध्यम से सिखाने का निर्णय लिया है। यह पुस्तक इसी प्रयास का एक भाग है। हम आशा करते हैं कि शिक्षक स्वविवेक के साथ इस पुस्तक का उपयोग करके इस महती उद्देश्य की पूर्ति करेंगे। जाहिर है आपके सुझावों का हमें हमेशा इंतजार रहेगा।

नंद कुमार (भा.प्र.से.)
संचालक

## लेखकीय

प्रत्येक शिशु जन्म से ही न्यायापेक्षी, सही कार्य–व्यवहार करने वाला एवं सत्य वक्ता होता है, परन्तु न्याय, सही कार्य–व्यवहार एवं सत्य से शिशु अनभिज्ञ रहता है। इन्हें समझने के लिए वह परम्परा पर, मुख्यतः शिक्षा परम्परा पर आश्रित रहता है। इस हेतु आज्ञापालन, अनुसरण, अनुकरण एवं जिज्ञासा सम्पन्न रहता है।

प्राथमिक कक्षा में प्रवेश के पूर्व ही सभी शिशु अपनी मातृभाषा को समझने व बोलने की योग्यता से सम्पन्न होते हैं एवं अपने परिवेश के प्रायः सभी कार्य–व्यवहार व वस्तुओं को पहचानते हैं। अपने परिवेश के अनुसार मान्यता व विचार संपन्न रहते है।

विद्यालय में प्रवेश के साथ शिक्षा में अक्षर, शब्दों एवं अंको को पहचानने व लिखने का कार्य शिक्षा की प्रमुख वस्तु होती है जबकि सभी विद्यार्थी अनेक वाक्यों को बोलने, अनेक वाक्य बनाने में समर्थ रहते हैं। उनकी इस पूर्व योग्यता को बढ़ाने के लिए शिक्षा में स्पष्ट कार्यक्रम का अत्याभाव है। फलतः शिक्षा में पर्याप्त रूचि नहीं बनती। इसी के साथ प्राथमिक स्तर पर स्वयं पढ़कर समझने–सीखने की योग्यता अधिकांश विद्यार्थियों में विकसित नहीं होती है और वे अधिकांशतः शिक्षक पर ही आश्रित रहते हैं। इसे पूरा करना ही शिक्षक की सार्थकता है।

अस्तु विद्यार्थियों की योग्यता के अनुसार मानवीय चेतना विकसित करने हेतु एवं शिक्षकों की सार्थकता प्रमाणित होने के उद्देश्य से 'चेतना विकास मूल्य शिक्षा' के पाठ्यपुस्तकों को लिखा गया है।

हमें विश्वास है यह पुस्तक इन अर्थों को प्राप्त करने में सफल होगा।

चेतना विकास मूल्य शिक्षा की पुस्तक प्रथम बार लिखी गई है अतः इसमें सुधार की अपार सम्भावनाएँ हैं। विद्वान अध्यापकगणों से इस हेतु सतत् मार्गदर्शन की अपेक्षा है।

**लेखकगण**

## प्रथम संस्करण की भूमिका

चेतना विकास मूल्य शिक्षा पर कक्षा 1 से 5 तक पुस्तक 2009 में लिखी गई।

प्रथम बार पुस्तक लिखने तथा अल्प समय में इसे पूरा करने के कारण व्याकरण संबंधी एवं टंकण संबंधी भूल भी रही। कक्षा 1 से सभी पाठ कविता में हैं एवं कविता में तुकबंदी का अभाव था।

प्रथम संस्करण में शिक्षा की वस्तु को यथावत रखते हुये व्याकरण में सुधार किया गया है एवं कविताओं में तुकबंदी पर थोड़ा ध्यान दिया गया है। कुछ तकनीकी से संबंधित पाठों को हटा दिया गया है।

हमें विश्वास है पुस्तक विद्यार्थियों के लिए सुबोध हेगा।

**लेखकगण**

# अनुक्रमणिका


| भाग | पाठ | नाम | पृ. संख्या |
|---|---|---|---|
| 1) मानव लक्ष्य | पाठ 1 | मानव लक्ष्य | |
| 2) समग्र व्यवस्था | पाठ 2 | अस्तित्व | |
| | पाठ 3 | पदार्थ अवस्था | |
| | पाठ 4 | प्राण अवस्था | |
| | पाठ 5 | जीव अवस्था | |
| | पाठ 6 | ज्ञान अवस्था | |
| 3) अखण्ड समाज | पाठ 7 | परिवार | |
| | पाठ 8 | मानव संबंध | |
| | पाठ 9 | मानव समाज | |
| | पाठ 10 | सामाजिक पूरकता | |
| 4) सार्वभौम व्यवस्था | पाठ 11 | जीवन क्रिया | |
| | पाठ 12 | जीवन व शरीर में संबंध | |
| | पाठ 13 | दृष्टा | |
| | पाठ 14 | रूप, गुण, स्वभाव, धर्म | |
| | पाठ 15 | जीने के चार आयाम | |
| | पाठ 16 | समझना, सीखना, करना | |
| | पाठ 17 | उपयोगिता मूल्य | |
| | पाठ 18 | आवश्यकता से अधिक उत्पादन | |
| | पाठ 19 | मानव शरीर | |
| | पाठ 20 | विहार | |
| | पाठ 21 | समय | |
| | पाठ 22 | मानव इतिहास | |
| | पाठ 23 | सुखी सुख बांटना है। | |
| | पाठ 24 | सभ्यता | |
| | पाठ 25 | उत्सव | |

# वंदना

वंदना उनकी करें, जिनसे सुशोभित है धरा।
जिनसे है मानव का पथ, प्रकाश ज्योति से भरा।।

जिनसे दिशा हमको मिली, नित मानवीय मार्ग की।
पथ मिला निश्चित हमें थी, कामना जिस मार्ग की।।
कृतज्ञता से सौम्यता की, नित्य आयी निरंतरा।
जिनसे है मानव का पथ, प्रकाश ज्योति से भरा।।

जिनका है चिन्तन शुभ यही, कैसे हो मानव सुखमयी।
प्रेरणा से जिनकी है, मानव का जीवन सुखमयी ।।
श्रद्धा समर्पित जिनसे आए, मानवीय परम्परा।
जिनसे है मानव का पथ, प्रकाश ज्योति से भरा।।

सबके सुख की कामना ले, रहती जिनकी कल्पना ।
निकली जिनसे मानवीय पथ, हेतु निश्चित योजना।।
पूज्यता उन हेतु जिनसे, है सुसज्जित वसुन्धरा ।
जिनमें है मानव का पथ, प्रकाश ज्योति से भरा।।

**–प्रदीप पूरक, बिजनौर (उ.प्र.)**

पाठ – 1

# मानव लक्ष्य

मानव लक्ष्य समाधान, समृद्धि अभय और सह–अस्तित्व है। इसे हम पूर्व कक्षाओं में पढ़ और समझ चुके हैं। प्रत्येक मानव का लक्ष्य यही है। इसलिए सभी मानव का लक्ष्य समान है, सभी मानव का लक्ष्य एक ही है।

समाधान प्रत्येक मानव का लक्ष्य है। समाधान का अर्थ है समझ पूरा हो जाना। समझ पूरा नहीं होने पर मनुष्य समस्या ग्रस्त होता है एवं दुखी होता है। समाधान प्रत्येक मानव के लिए एक ही होता है। जैसे गणित में 2 और 2 का योगफल 4 होता है। यह उत्तर सभी मानव के लिए एक ही है। इसी प्रकार पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घुमती है, यह भी सभी के लिए एक जैसा होता है।

समाधान कभी भी बदलता नहीं है, सभी के लिए एक जैसा रहता है। सभी मानव एक–दूसरे के साथ व्यवहार करते है। अच्छा व्यवहार करने पर मानव सुखी होते है। अच्छा व्यवहार सभी मानव के लिए एक जैसा होता है। अच्छा व्यवहार समझ में आना समाधान है।

इसी प्रकार मनुष्य का जल, वायु और मिट्टी के साथ संबंध है। इसे समझना समाधान है। मनुष्य का पेड़–पौधे के साथ भी संबंध है। यह संबंध निश्चित है और बदलता नहीं है। इसे समझा जाना समाधान है। सभी जीव जन्तुओं के साथ मनुष्य का निश्चित संबंध है। इसे समझना समाधान है।

मनुष्य का लक्ष्य समृद्धि है, समृद्धि का अर्थ है – हमारी आवश्यकता को हम पूरा कर रहे हैं। आवश्यकता को पूरा करने के लिए दो तरीके हैं – प्रथम उत्पादन द्वारा एवं द्वितीय सेवा द्वारा।

उत्पादन का अर्थ है कोई आवश्यक वस्तु के निर्माण में भागीदारी करना। जैसे किसान अन्न उपजाते हैं, कई व्यक्ति वस्त्र निर्माण में भागीदारी करते हैं। कुछ लोग बस, ट्रेन, कार के उत्पादन में भागीदारी करते हैं। ऐसे ही अनेक प्रकार के उत्पादन कार्य प्रचलित है।

## पाठ – 1

सेवा का अर्थ है मानव शरीर या शरीर के लिए उपयोगी वस्तु की सुरक्षा करना। जैसे शरीर में चोट लगने पर उसका उपचार करना सेवा है। इसी प्रकार बाल काटना भी शरीर की सुरक्षा और सेवा है। मकान की पुताई–लिपाई करना, गाड़ी की मरम्मत करना, कपड़े को धोना आदि बहुत से कार्य हैं जिन्हें सेवा कहते है।

इस प्रकार समृद्धि के लिए अनेक प्रकार के उत्पादन और सेवा कार्य हैं। कोई भी कार्य चुने, इसका फल समृद्धि ही होता है।

प्रत्येक मनुष्य भय से मुक्त होकर विश्वास पूर्वक जीना चाहता है। इसे अभय कहते हैं। यह सभी मानव का लक्ष्य है। परिवार में जीने के नियम की समझ होने पर हम अभय पूर्वक जी सकते हैं।

प्रत्येक मानव आयु, जल, मिट्टी, पेड़–पौधे व जीव–जन्तु के साथ जीता है । अकेले कोई मनुष्य जी नहीं सकता। मानव समाज और शेष तीनों अवस्थाओं के साथ जीना ही सह–अस्तित्व है।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि सभी मनुष्य का लक्ष्य एक ही है – समाधान, समृद्धि अभय और सह–अस्तित्व। यह एक शिशु का लक्ष्य है, एक युवा का भी एवं वृद्ध का भी लक्ष्य है। मानव लक्ष्य समान है।

पाठ – 2

# आस्तित्व

अभी तक हम यह समझ चुके है कि अस्तित्व में 2 प्रकार की सच्चाई है, प्रथम–आकाश या शून्य एवं द्वितीय –अनेक ग्रह–उपग्रह और तारे । आकाश का कोई ओर छोर नहीं है, यह असीम है। आकाश प्रत्येक इकाई के भीतर भी पाया जाता है। अतः इसे व्यापक भी कहते है।

हम यह भी समझ चुके हैं कि आकाश में सभी ग्रह एवं तारे गतिशील है। ये ग्रह–तारे आकाश से बाहर जा ही नहीं सकते, सभी ग्रह एवं तारों के सभी ओर शून्य हैं। अतः सभी ग्रह एवं तारे व्यापक आकाश में डूबे हुए हैं। किसी भी दो ग्रहो के बीच में शून्य (आकाश) है। शून्य होने के कारण ही ये अलग–अलग दिखते हैं। शून्य प्रत्येक इकाई के सभी ओर है। शून्य ही प्रत्येक इकाई की सीमा है।

शून्य पारदर्शी है इसलिए इसमें रहने वाली सभी इकाईयों को हम देख सकते हैं। तारे ग्रह–उपग्रह सभी इकाई है। इकाईयों के समूह को प्रकृति कहते हैं।

शून्य, व्यापक, आकाश, खाली स्थान या स्थान एक ही सच्चाई के अलग–अलग नाम है। प्रकृति और व्यापक साथ–साथ है। यह सह–अस्तित्व कहलाता है।

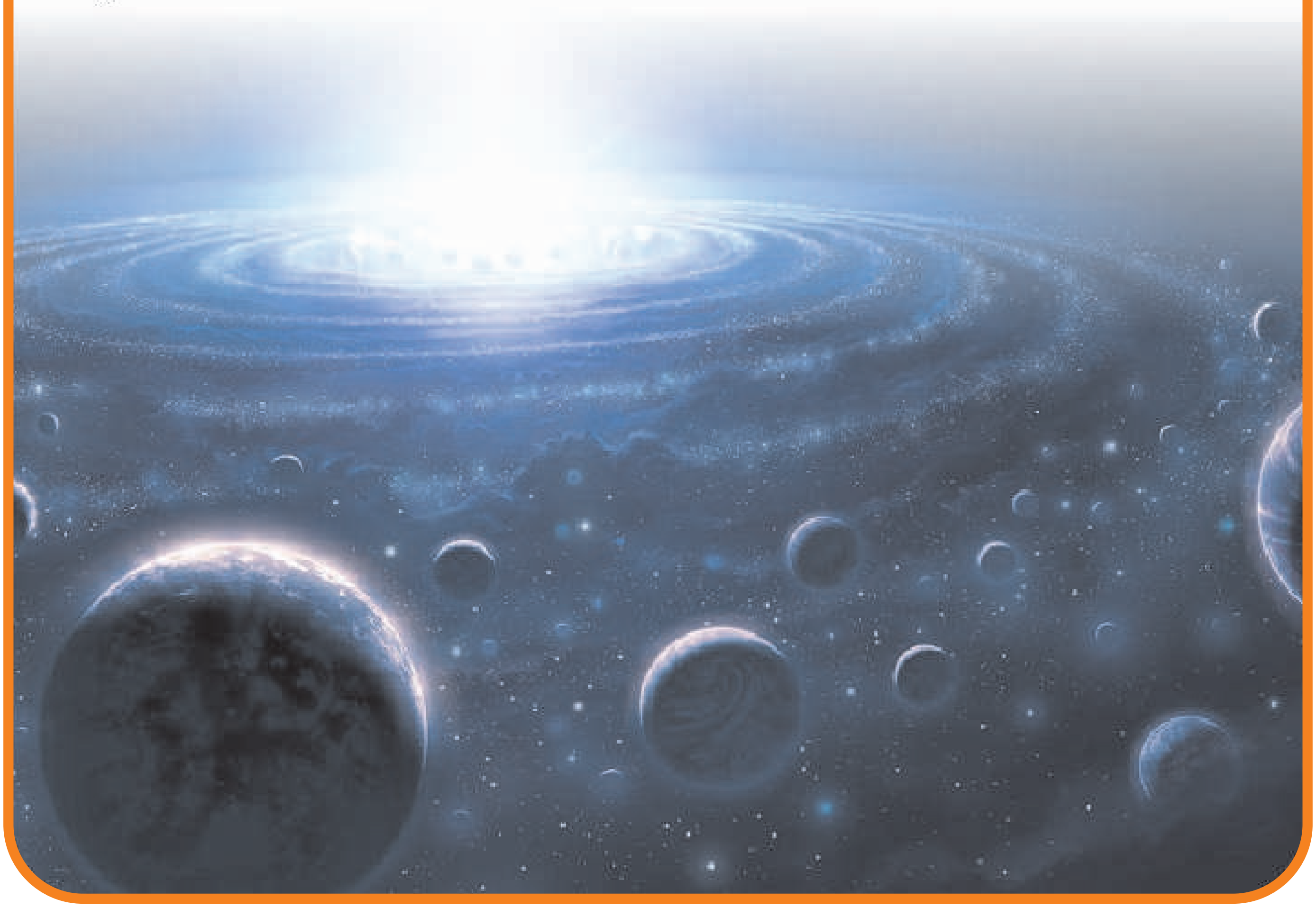

पाठ – 3

# पदार्थ अवस्था

पूर्व की कक्षाओं में यह हम समझ चुके हैं कि पदार्थ अवस्था में मिट्टी पानी एवं वायु आते हैं। पदार्थ अवस्था की सभी इकाईयों का आचरण निश्चित है। पदार्थ अवस्था व्यवस्था में हैं। पदार्थ अवस्था में पहचानने एवं निर्वाह करने की क्रिया होती है।

तांबा और जस्ता दो भिन्न धातुएं हैं। इन दोनों का आचरण निश्चित रहता है। जब इन दोनों धातुओं को पिघलाकर एक निश्चित अनुपात में मिलाते हैं तो एक नई वस्तु मिलती है, इसे पीतल कहते हैं। इसे तांबा और जस्ता का मिश्र धातु भी कहते है। पीतल का आचरण भी निश्चित होता है। इस प्रकार जब निश्चित आचरण वाले दो या दो से अधिक पदार्थ मिलकर अन्य वस्तु बनती है, तब भी उस नई वस्तु का आचरण निश्चित रहता है। तांबा और जस्ता मिलकर पीतल बनता है। यह क्रिया भौतिक क्रिया कहलाती है।

एक अन्य प्रकार की क्रिया पदार्थावस्था में होती है। इसे रासायनिक क्रिया कहते हैं। जैसे कोयले को जलाने पर आग पैदा होती है। इससे उष्मा मिलती है, थोड़ा सा धुंआ होता है और अंत में थोड़ी सी राख बचती है। ऐसा हर बार होता है। इससे यह निष्कर्श निकलता है कि रासायनिक क्रिया का परिणाम निश्चित होता है।

इस प्रकार पदार्थ अवस्था में सभी इकाईयों का आचरण निश्चित होता है। प्रत्येक क्रिया का निश्चित परिणाम होता है। इसलिए पदार्थ अवस्था को परिणाम अनुशंगी व्यवस्था कहते हैं। परिणाम अनुशंगी व्यवस्था का अर्थ है परिणाम के पीछे चलने वाली व्यवस्था।

पदार्थ अवस्था परिणाम अनुशंगी व्यवस्था है।

पाठ – 4

# प्राणावस्था

पूर्व कक्षाओं में हम प्राणावस्था के प्रकार में वृक्ष, लता, झाड़ी एवं शाक या घास को पहचान चुके हैं। यह भी समझे हैं कि जड़, तना, शाखा, पत्ती, फल एवं बीज ये वनस्पतियों के सात अंग होते हैं। पेड़–पौधे एवं पदार्थ अवस्था में अन्तर को भी समझ चुके हैं। यह अन्तर मुख्यतः 3 बिन्दुओं पर है, (1) वृद्धि (2) बीज गुणन एवं (3) श्वसन। प्राणावस्था में पदार्थवस्था की तरह पहचानने एवं निर्वाह करने की क्रिया होती है।

इस कक्षा में हम पदार्थ एवं प्राण अवस्था के संबंध पर अध्ययन करेगें।

प्राण अवस्था का आवास पदार्थ अवस्था है। अर्थात् प्राण अवस्था, पदार्थ पर ही रहते हैं या पाये जाते है। प्राणवस्था की इकाई धरती (स्थल) या जल में पाये जाते हैं।

प्राण अवस्था का आहार भी पदार्थ है। ये जल, वायु, एवं अनेक रसायनों को भूमि से ग्रहण कर पुष्ट होते हैं। पुष्ट होने का अर्थ है वायु, जल एवं मिट्टी में पाये जाने वाले रसायनों को प्राणावस्था अपने अनुकूल बनाते है और ये वस्तुएं प्राणावस्था की वृद्धि का कारण बनते हैं, प्राणावस्था का भाग बन जाते है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि पदार्थावस्था ही प्राणावस्था में परिवर्तित हो जाते हैं।

वनस्पतियों के पत्ते पुराने होने पर नीचे गिर जाते हैं। पत्ते के अलावा छाल, फूल एवं फल, शाखायें भी नीचे गिरती हैं। ये सूख कर एवं सड़कर पदार्थ अवस्था में परिवर्तित हो जाते हैं। इन्हें हम खाद भी कहते हैं खाद पौधों का भोजन होता है। इससे पौधों को पोषण मिलता हैं ।

वनस्पतियों में प्रत्येक प्रजाति का आकार निश्चित होता है, ऊँचाई निश्चित होती है। साथ ही इनके पत्ते का आकार, लम्बाई–चौड़ाई, रंग, गंध, भी निश्चित होता है। ऐसा ही फूल, फल एवं बीज का भी होता है। निश्चित आकार लंबाई, चौड़ाई, गंध स्वाद के कारण ही हम पेड़–पौधों को अलग–अलग पहचान पाते है। इसी प्रकार वनस्पतियों के उगने, फूलने, फलने एवं सूखने का समय भी निश्चित होता है। इस निश्चितता को नियंत्रण कहते हैं। नियंत्रण ही व्यवस्था है।

वनस्पतियों में बीज बनने की क्रिया होती है। बीज पुनः अंकुरित होकर वैसा ही पौधा बनता है। उस पौधे में सारे गुण पहले जैसे ही रहते है। कुछ काल के बाद प्रत्येक वनस्पति सूख जाती है एवं पदार्थ अवस्था में बदल जाती है, परन्तु बीज के कारण उस वनस्पति की परम्परा बनी रहती है। वनस्पति से बीज बनना एवं बीज से पुनः वैसा ही पौधा बनना बीजानुषंगी व्यवस्था कहलाता है।

प्राणावस्था बीजानुषंगी व्यवस्था है।

पाठ – 5

# जीवावस्था

इससे पहले हम प्राणावस्था में नियम एवं नियंत्रण को समझ चुके है। यह भी समझे हैं कि जीव अवस्था में प्राणावस्था के सभी आचरण पाये जाते हैं। जैसे कि श्वसन, वृद्धि और संख्या वृद्धि । इसके अलावा जीवों में एक विशेष प्रकार की व्यवस्था है। जीव अवस्था में शाकाहारी एवं मांसाहारी 2 वर्ग है। ये दोनों वर्ग साथ–साथ रहते हैं। शाकाहारी पशु–पक्षी एवं मांसाहारी पशु–पक्षी के शरीर की रचना में कुछ भिन्नता होती है। यह विशेषतः दाँत, नाखून एवं आँत में होती है।

इन दोनों वर्गों पर ध्यान देने पर यह स्पष्ट होता है कि शाकाहारी पशु पक्षियों की अधिक प्रजाति होती है। इनकी आयु भी अधिक होती है एवं इनकी संख्या वृद्धि की दर अधिक होती है। जैसे – सूअर, खरगोश एक वर्ष में 12 बच्चे पैदा करते हैं। मांसाहारी पशु–पक्षियों में तुलनात्मक रूप से कम प्रजाति होती है। इनकी संख्या वृद्धि की दर भी कम होती है। इस कारण मांसाहारियों की संख्या शाकाहारियों से बहुत कम होती है।

मांसाहारी जीव प्रधानतः शाकाहारी जीवों का भोजन करते है। इस प्रकार शाकाहारी व मांसाहारी जीवों का अनुपात निश्चित रहता है। मांसाहारी जीवों को भोजन मिलते रहे एवं शाकाहारी भी बने रहें, ऐसी व्यवस्था है। इसे जीव अवस्था में संतुलन कहते है। इस प्रकार जीवावस्था में नियम, नियंत्रण एवं संतुलन होता है। जीवावस्था नियम, नियंत्रण एवं संतुलन पूर्वक व्यवस्था में है।

जीव अवस्था के अध्ययन में यह स्पष्ट होता है कि गाय की संतान गाय जैसा आचरण करती है और गाय जिन–जिन वनस्पतियों को खाती है। गाय की संतान भी उन्हीं वनस्पतियों को खाती है। इसके पानी पीने का तरीका विश्राम का तरीका पूर्व पीढ़ी के अनुसार ही होता है। इसे सिखाना नहीं पड़ता, यदि गाय के बच्चे को पानी में डालें तो वह तैरना प्रारंभ कर देता है। तैरना सिखाने की आवश्यकता नहीं होती है। इसे वंशानुषंगीयता कहते हैं।

जीवों का आचरण वंशानुषंगीयता पूर्वक निश्चित करता है। एक पीढ़ी से अग्रिम पीढ़ी तक पहुँचता रहता है। इसमें कभी भी कोई बाधा नहीं होता है। यह निश्चित होता है, यह व्यवस्था है।

पाठ – 6

# ज्ञानावस्था

पूर्व में हम यह समझ चुके है कि मानव ज्ञानावस्था की इकाई है। प्रत्येक मानव में कुछ समानताएँ होती है, इनमें से मुख्य है :–

1. प्रत्येक मानव की शरीर रचना समान है।
2. प्रत्येक मानव का लक्ष्य समान है।
3. प्रत्येक मानव की कल्पनाशीलता एवं कर्म स्वतंत्रता होती है। इस आधार पर प्रत्येक मानव समान है।
4. प्रत्येक मानव शरीर की क्रिया एवं जीवन क्रिया का संयुक्त रूप है। इस आधार पर प्रत्येक मानव समान है।
5. प्रत्येक मानव जानना, मानना, पहचानना एवं निर्वाह करना – ये चार प्रकार की क्रियाएँ करता है।

इस आधार पर मानव में समानता है।

इस पाठ में हम जीवन क्रिया और शरीर क्रिया को विस्तार से समझेंगे।

हम यह समझ चुके हैं कि स्वतः क्रिया के लिए हम कोई जिम्मेदारी नहीं लेते हैं – जैसे भूख लगना, पसीना आना, हम ऐच्छिक क्रियाओं की जिम्मेदारी लेते हैं। अपने किये हुये कार्य की जिम्मेदारी लेते हैं एवं कहते हैं कि 'मैने' किया है। स्वतः क्रिया करने वाले का नाम शरीर एवं ऐच्छिक क्रिया करने वाले का नाम 'मैं' या जीवन है।

यदि कोई कार्य करते समय हमारा हॉथ किसी गर्म वस्तु में अचानक छू जाए तो हाथ तुरंत हट जाता है। इसमें सोच–विचार कर निर्णय लेने का समय नहीं होता है। यह क्रिया वैसे ही होती है, जैसे स्वतः क्रिया। विज्ञान की भाषा में इसे प्रतिवर्ती क्रिया कहते हैं।

आइये अब हम दूसरी घटना पर विचार करते है। जब हम रास्ते पर चलते है, हल्का धुंधला प्रकाश हो जाए तब हमारे सामने की वस्तुएं बहुत स्पष्ट नहीं दिखती है। इस समय कोई रस्सी का टुकड़ा लंब पड़ा हो, उस पर हमारा पैर पड़ जाए तो क्या होता है? जब रस्सी के टुकड़े पर पैर पड़ जाए उस क्षण यदि विचार आये कि यह साफ है तो पैर तुरंत उठ जाता है। बहुत तेजी से और यदि यह विचार आये कि वह रस्सी है तो पैर नहीं उठता।

## पाठ – 6

इसके विपरीत भी होता है, जैसे कि सांप पड़ा हो उस पर पैर पड़े और यह विचार आये कि वह रस्सी है तब पैर नहीं उठता। यदि यह विचार आये कि सांप है तो पैर तुरंत उठ जाता है।

सांप और रस्सी के उदाहरण में पैर का उठना विचार पर निर्भर करता है न कि सांप या रस्सी, जो वस्तु है उस पर, जबकि गर्म वस्तु को छूने की घटना में हॉथ का उठना गर्म वस्तु पर निर्भर करता है न कि विचार पर। अतः सांप–रस्सी का उदाहरण प्रतिवर्ती क्रिया का कारण नहीं है। यह जीवन क्रिया के कारण होता है।

मानने वाला एवं जानने वाला ही जीवन कहलाता है। मानव में जानने की क्षमता होती है, इसलिए मानव को ज्ञान अवस्था कहते हैं।

मानव कल्पना करता है एवं उसे साकार करने के लिए शरीर द्वारा कार्य करता है। पहले कल्पना होती है, उसके बाद कार्य होता है। कल्पना के अनुसार कार्य होता है। पहले कल्पना होती है कि किसी कार्य को करने से सूखी हो सकती है। इसके पश्चात् वह कार्य करते हैं। जब ऐसा लगता है कि मकान बनाने से सूखी होंगे, तब मकान बनाते हैं। जब यह लगता है कि मकान को तोड़ने से सुखी होंगे तब मकान को तोड़ देते हैं।

इस प्रकार की बातों को स्वयं जांच कर देखना है कि हम ऐसा करते हैं या नहीं।

मानव अपनी समझ से सारे कार्य करता है, इसलिए मानव को संस्कार अनुषंगी कहते हैं। यदि मानव किसी गलत कार्य को सही मान लेता है तो वह उस गलत कार्य को करता है। समझदार होने पर मानव सहीं और गलत का निर्णय कर सकता है। शिक्षा के द्वारा समझदार बनते हैं।

जीव अवस्था वंशानुषंगी व्यवस्था है। सभी जीव अपने शरीर को बनाये रखने के लिए जीते हैं। सारा कार्य इसी उद्देश्य के लिए करते हैं, इसमें कभी भी गलती नहीं है, इसलिए जीव व्यवस्था में हैं । जीवों को व्यवस्था में जीने के लिए शिक्षा की आवश्यकता नहीं है।

शिक्षा के द्वारा मानव सही कार्य, सही व्यवस्था को समझ पाता है। शिक्षा द्वारा ही शरीर को स्वस्थ बनाये रखने की विधि समझ पाता है।

पाठ – 7

# परिवार

पूर्व कक्षाओं में हम परिवार में होने वाले अनेक प्रकार के कार्य को समझे हैं। इस पाठ में हम परिवार के स्वरूप और कार्यों को विस्तार से समझायेंगे।

परिवार एक सम्बन्ध प्रधान समूह है। माता–पिता एवं संतान का संबंध जन्म से ही होता है। यह संबंध मृत्यु तक बना ही रहता है। शिशु के जन्म के समय से ही माता–पिता उसकी सेवा, आवश्यकता की पूर्ति, उत्तम शिक्षा की व्यवस्था करते हैं। कुछ वर्षों के बाद शिशु युवा बन जाते हैं एवं माता–पिता वृद्ध हो जाते हैं। वृद्धावस्था में शरीर असक्त हो जाता है। बीच–बीच में रोग का आक्रमण होता रहता है। ऐसे समय में संतान माता–पिता की सेवा करते है, उनके भोजन का प्रबंध करते हैं। उनके लिए चिकित्सा का प्रबंध करते हैं। यह क्रम पीढ़ी से पीढ़ी तक चलता रहता है। यह संबंधों का निर्वाह कहलाता है। संबंधों के निर्वाह से आपस में विश्वास होता है और मानव सुखी रहते हैं, यह निर्वाह दोनो पक्षों से होता है, यदि कोई पक्ष निर्वाह करने में कमी करते हैं तो दोनो पक्ष दुःखी होते हैं।

माता–पिता एवं सन्तान सम्बन्ध की तरह ही काका–काकी, दादा–दादी, भाई–बहन, सम्बन्ध जन्म से ही बन जाते हैं। मृत्यु पर्यन्त इसका निर्वाह किया जाता हैं। इस सम्बन्धों के निर्वाह से ही परिवार सुखी रहता हैं। इसका निर्वाह न करने पर परिवार दुःखी होता हैं और परिवार में टूट आ जाती हैं।

परिवार में जीना विश्वास निर्वाह के आधार पर होता हैं। यह परिवार का सार्वाधिक महत्वपूर्ण भाग हैं। यह व्यवहार कहलाता हैं। प्रत्येक शिशु इस व्यवहार के निर्वाह में सक्षम हो सके इस हेतु माता–पिता इनमें शिक्षा का प्रबंध करते हैं।

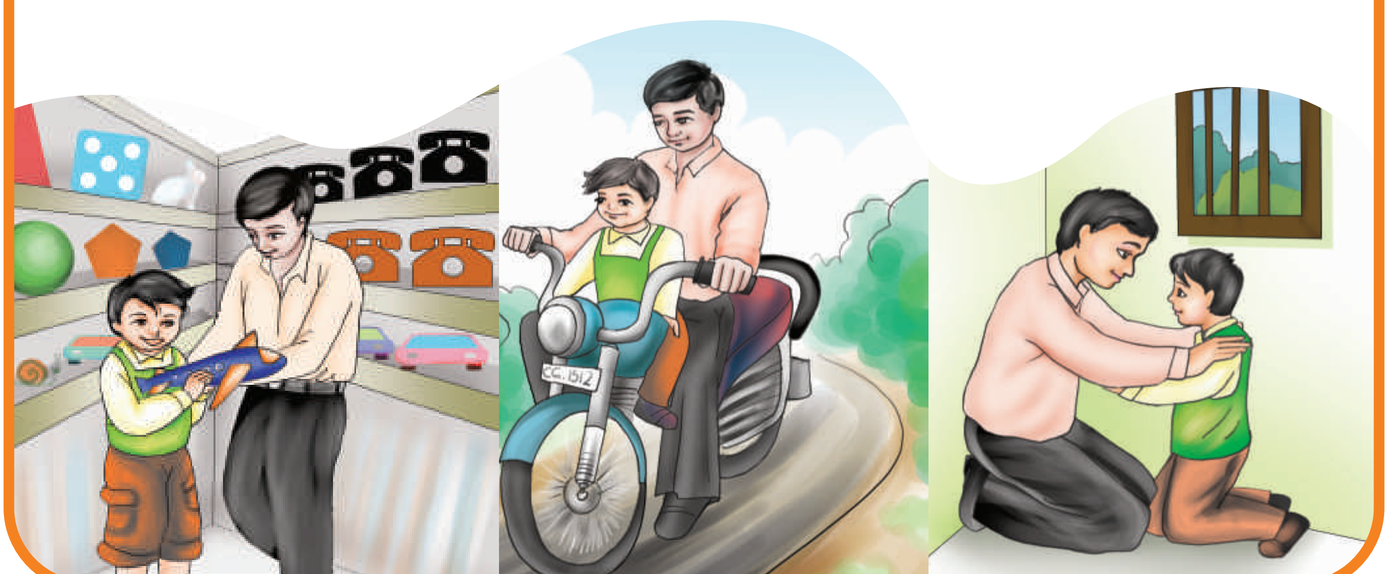

## पाठ – 7

परिवार में दुसरा महत्वपूर्ण कार्य सेवा हैं। सेवा कार्य प्रतिदिन होता हैं। इसमें कभी अवकाश नहीं होता। सबेरे मुँह धोने के लिए पानी की आवश्यकता होती है इसलिए पानी को पहले से ही लाकर रखते हैं। पानी अधिक लम्बे समय तक रखा रहने से प्रदूषित हो जाता हैं। अतः पानी को शुद्ध करने का उपाय करना पड़ता है या नित्य पानी लाने का प्रबंध करना पड़ता है। मुँह धोने के पश्चात् दूध या जलपान की आवश्यकता होती हैं। प्रतिदिन ताजा दूध प्राप्त करने के लिए गाय की सेवा करते हैं एवं दूध निकालते हैं। जलपान तैयार करते है इसके पश्चात पुराने कपड़े उतार कर धुले हुए साफ कपड़े पहनते हैं। पुराने कपड़ो को धोते है। ये बहुत सारे कार्य एक व्यक्ति नहीं कर सकता इसलिए सारा परिवार मिलकर इस कार्य को करते हैं। यह परिवार का अनिवार्य काम हैं। सेवा कार्य में भागीदारी करने से परिवार में प्यार एवं सम्मान मिलता हैं।

व्यवसाय परिवार का एक महत्वपूर्ण एवं अनिवार्य कार्यक्रम हैं। व्यवसाय के द्वारा ही हमारे लिए आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति होती हैं। आवश्यक वस्तुओं में भोजन वस्त्र, आवास, औषधि, ईंधन, दूरगमन के साधन, दूरदर्शन एवं दूरश्रवण के साधन, अनेक प्रकार के यंत्र आते हैं। इनके निर्माण में भागीदारी करना उत्पादन कहलाता हैं। परिवार के कुछ वयस्क सदस्य व्यवसाय द्वारा आवश्यक वस्तुओं को प्राप्त करते हैं। श्रम के द्वारा ही सारे व्यवसाय होते हैं।

शिक्षा परिवार का एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम है। छोटे बच्चों को बोलना, चलना, भोजन करना, अपने शरीर की सफाई, वस्तुओं की सुरक्षा, बड़ो का सम्मान, समव्यस्कों से स्नेह, गुरूजनो से सीखने के लिए उत्सुकता ये सब परिवार में ही स्वीकृति होते हैं। 5–6 वर्ष का शिशु जब प्रथम बार विद्यालय जाता हैं, तब उसके मन में समझने व सीखने की जिज्ञासा होती हैं। वह गुरूजनो की आज्ञापालन की प्रवृत्ति सम्पन्न रहता हैं। यह सब कहाँ से आता हैं ?शिशु की इस मानसिकता को तैयार करने में परिवार का ही भूमिका प्रधान हैं। यह शिक्षा के लिए अनिवार्य भूमिका हैं।

प्रत्येक व्यक्ति स्वस्थ रहने पर अध्ययन में मन लगा सकते हैं, कार्य सीख सकते हैं। स्वस्थ रहने के लिए एक निश्चित जीवन शैली की आवश्यकता होती हैं। यह हम परिवार में ही समझना प्रारंभ करते हैं।

इस प्रकार मानव के सुखपूर्वक जीने का स्थान परिवार कहलाता हैं। परिवार में जीने की योग्यता विकसित करने के लिए व्यवहार एवं शिक्षा अनिवार्य कार्यक्रम हैं।

पाठ – 8

# मानव सम्बन्ध

हम सभी परिवार में जीते है। परिवार में रहने वाले सभी व्यक्तियों का नाम हम जानते है एवं उनके साथ हमारा क्या संबंध है एवं उसे भी पहचानते है एवं उसके अनुसार ही सम्बोधित करते है। इसके अलावा परिवार के सभी व्यक्तियों में आपस में कौन–कौन से संबंध है इसे भी पहचानते है।

माता–पिता छोटे बच्चों का पालन–पोषण करते है। उन्हें संरक्षण देते है। संरक्षण का अर्थ है सभी प्रतिकूल वातावरण एवं वस्तुओं से सुरक्षा प्रदान करते है। माता–पिता की तरह दादा–दादी, मामा–मामी, नाना–नानी, काक–काकी, मौसा–मौसी, फूफा–फूफी एवं अन्य सभी बड़े बच्चों का पोषण, संरक्षण एवं शिक्षा प्रदान करते है। पोषण, संरक्षण एवं शिक्षा पारक प्रत्येक शिशु मानव बनने की ओर अग्रसर होता है।

परिवार के बाहर भी हम लोगों को सम्बन्धों के द्वारा ही सम्बोधित करते है। दादा–दादी के मित्रो को हम दादा–दादी कहकर सम्बोधित करते है। इसी प्रकार माता–पिता के मित्रों को समवयस्कों को हम माता एवं पिता तुल्य मानते हैं तथा सम्बोध्ति करते है।

विद्यालय में जो गुरुजी हमें पढ़ाते हैं उन्हें हम गुरुजी अथवा अध्यापक जी एवं अध्यापिका जी कहकर सम्बोधित करते हैं। विद्यालय में पढ़ाने वाले सभी गुरुजनों को भी गुरुजी अथवा अध्यापक जी एवं अध्यापिका जी कहकर सम्बोधित करते है।

विद्यालय में हमारे साथ पढ़ने वाले सभी विद्यार्थी मित्र होते हैं। इसी प्रकार हमारे छोटे भाईयों एवं बहनों के साथ पढ़ने वाले तथा बड़े भाइयों एवं बहनों के साथ पढ़ने वाले सभी विद्यार्थी मित्र होते हैं। मित्रों को हम भैया एवं दीदी कहकर सम्बोधित करते है।

परिवार में भाई–बहन का सम्बन्ध होता है। यही सम्बन्ध परिवार में बाहर मित्र सम्बोधन कहलाता है। जिस प्रकार भाई–बहन एक दूसरे का सहयोग करते हैं, साथ मिलकर खेलते एवं पढ़ते है, उसी प्रकार मित्र भी आपस में साथ–साथ खेलते, पढ़ते एवं सहयोग करते हैं और परस्पर भैया–दीदी कहकर सम्बोधित करते है।

पाठ – 9

# मानव समाज

पूर्व की कक्षाओं में हम ग्राम एवं नगर के बारे में पढ़े हैं। ग्राम एवं नगर, अखण्ड मानव समाज की छोटी–छोटी इकाई हैं। पृथ्वी के सभी मानव समाज में जीते हैं।

ग्राम एवं नगर में मुख्य अंतर जनसंख्या का ही होता है। ग्राम में कम एवं नगरों में अधिक जनसंख्या होती हैं। ग्राम एवं नगर में दूसरा अन्तर आजीविका के तरीके को लेकर होता हैं। ग्राम में मुख्यतः लघु उद्योग, वृहत् उद्योग एवं विनिमय के कार्य होते हैं। शेष सभी कार्यक्रम ग्राम एवं नगर में समान होते है। जैसे–ग्राम में कच्चे एवं पक्के दोनों प्रकार के मकान होते है ऐसा ही नगर में भी होता हैं। ग्राम एवं नगर में विद्यालय, खेल के मैदान, स्वास्थ्य केन्द्र, सड़कें, जल एवं विद्युत का प्रबन्ध होता हैं।

ग्राम एवं नगर में दो प्रमुख अन्तर होते है उसके आधार पर जीवन शैली में कुछ भिन्नता होती हैं। जैसे गाँव में विद्यालय घर के पास होता है इसलिए विद्यार्थी एवं अध्यापक पैदल ही आते हैं। नगर में विद्यालय अनेक घर के पास एवं अनेक घर से दूर होता है। दूर से आने वाले विद्यार्थी एवं अध्यापक किसी वाहन में बैठकर आते हैं। इसी प्रकार आजीविका के आधार पर भी कुछ भिन्नता दिखती हैं।

मानव–मानव सम्बन्ध ग्राम, नगर एवं पूरे विश्व में एक जैसा रहता हैं। सभी स्थानों पर माता–पिता, भाई–बहन, मित्र, गुरू–शिष्य, साथी–सहयोगी सम्बन्धों में जीने को तरीका सब स्थानों पर एक जैसा रहता हैं। ग्राम–नगर सभी स्थानों में परिवार में जीने का ढ़ग एक जैसा रहता है। इन दोनों ही स्थानों पर व्यवस्था के सभी कार्य एक जैसे ही होते हैं। व्यवस्था के कार्य में शिक्षा–संस्कार, स्वास्थ्य संयम, उत्पादन कार्य, विनिमय कार्य एवं न्याय सुरक्षा के कार्य आते हैं। सभी स्थानों में स्थानीय लोग मिलजुलकर व्यवस्था के कार्य को करते है।

## पाठ – 9

पूरे विश्व में मानव रहते हैं। जगह–जगह पर भौगोलिक भिन्नाताएँ होती हैं। जैसे कई स्थानों पर वर्ष में 8–9 माह बर्फ जमी रहती हैं, कई स्थानों पर रेत ही रेत होती हैं, इन्हें रेगिस्तान कहते हैं। इसी प्रकार मैदानी प्रवेश, पर्वतीय प्रवेश, समुद्रतटीय प्रदेश आदि। इन सभी स्थानों पर रहने के तरीके में भिन्नताएँ होती हैं। परन्तु सभी स्थानों में मानव सम्बन्धों में एवं व्यवस्था में जीने का ढंग एक जैसा होता हैं। मानव, मानव में जीकर एवं व्यवस्था में जीकर सुखी एवं प्रसन्न होता है। इसलिए मानव संबंध एवं व्यवस्था संबंध महत्वपूर्ण हैं।

मावन समाज में जीते समय सब एक दूसरे की मदद करते हैं। जैसे छोटे शिशु को चलने सिखाने के लिए अनेक लोग मदद करते है, बोलना सिखाने के लिए भी लोग मदद करते हैं। समझदार बनाने के लिए शिशु को विद्यालय भेजते हैं वहाँ अनेक शिक्षक कई वर्षों तक उन्हें समझदार होने के लिए प्रेरणा एवं दिशा देते हैं। ये सब पूरकता कहलाते हैं।

मानव समाज में कई प्रकार की पूरकता दिखती है जैसे – हमारे कपड़े दूसरे स्थानों में अनेक लोग मिलकर बनाते हैं। उन्हें हम जानते एवं पहचानते भी नहीं हैं। इसी प्रकार कलम, पुस्तकें, कॉपी, बस्ता, जूते, मोजे, मकान, गाड़ी आदि ये सभी वस्तुएँ अनेक लोग श्रम करके तैयार करते हैं।

पाठ – 10

# सामाजिक पूरकता

आप सुबह उठते हैं। मंजन करते हैं। बाल्टी में पानी भरकर स्नान करते हैं। तौलिए से शरीर को पोछते हैं। माँ थाली में नाश्ता देती हैं। आप नाश्ता कर जूता या चप्पल पहनकर विद्यालय की ओर जाते हैं। रास्ते में सड़क पर अनेक प्रकार के वाहन, सायकल, दुकाने, मकान, इनमें रखे हुए अनेक वस्तुओं को देखते हैं। विद्यालय में श्यामपट, चाक, पेन्सिल, कलम एवं अनेक प्रकार की पुस्तकें देखते हैं।

कितनी सारी वस्तुएँ सुबह से रात तक हम कितने प्रकार की वस्तुओं का प्रयोग करते हैं। सोचिये इन वस्तुओं को कौन बनाता हैं ? ये वस्तुएँ घर में कैसे आ गई।

हमारे प्रतिदिन की आवश्यकता की अनेक वस्तुएँ है। इनमें से कुछ वस्तुएँ ही हमारे अपने घर में बनती है। शेष सभी वस्तुएँ दूसरे मानव बनाते है। बनाने का अर्थ है प्रकृति से प्राप्त किसी वस्तु पर कल्पना एवं श्रम लगाना। जैसे मिट्टी से पानी का घड़ा बनाना, भवन बनाना एवं धान से चॉवल निकालना, भात पकाना, सड़क बनाना, कपड़े बुनाना, कपड़े सिलना, औषधि निर्माण, बर्तन बनाना, टी.वी. बनाना, मोबाईल बनाना, अन्न उपजाना ऐसे अनेक प्रकार के कार्य हैं। जिनमें सुबह उठकर लोग लग जाते हैं एवं देर रात्रि तक कार्य करते हैं। कारखानों में तो रात्रि में भी कार्य होता है। बिजली सारी रात भर उपलब्ध रहती है। लोक सारी रात्रि जागकर कार्य करते हैं। अनेकों लोगों के अथक प्रयास से हमें ये सब वस्तुएँ उपलब्ध होती है।

क्या हमारी आवश्यकता की सभी वस्तुएँ हम स्वयं बना सकते है ?

सभी मानव आवश्यकता एवं अवसर के आधार पर उत्पादन, सेवा एवं विनियम का कार्य करते हैं। इस प्रकार हमें मानव समाज में पूरकता समझ में आती है। इस पूरकता को समझना एवं पूरकता को बनाये रखना ही समझदारी कहलाता है।

पके हुए चॉवल का भात बनने तक कितने लोगों की पूरकता रहती है?सोचिए।

यह भी सोचिए कि भारत का मानचित्र तैयार करने में कितने लोग कार्य किये होंगे। यह कितने दिनों या कितने वर्षों में बना होगा ?

पाठ – 11

# जीवन क्रिया

इसके पूर्व जानना, मानना, पहचानना एवं निर्वाह करना ये चार प्रकार की क्रियाओं को हम पहचाने हैं।

जानबूझकर करने वाली क्रिया को जीवन कहते हैं। जीवन की ही चार क्रियाएं जानना, मानना, पहचानना एवं निर्वाह करना है।

जानना वह क्रिया है जिसमें निरन्तर रहने वाली वस्तुओं और क्रियाओं को समझा जाता है। जैसे पृथ्वी निरन्तर घूम रही है। यह निरन्तर होने वाली क्रिया है। इसी प्रकार दूसरा उदाहरण है आकाश निरन्तर रहता है। इस प्रकार निरन्तर रहने वाली वस्तु और निरन्तर होने वाली क्रिया को समझते हैं। ये हर समय एवं प्रत्येक स्थान पर एक जैसे रहती है, बदलती नहीं है।

स्थान–स्थान पर बदलने वाली क्रियाओं को भी हम स्वीकारते हैं। तथा समय–समय पर बदलने वाली क्रियाओं को भी हम स्वीकारते हैं। इन स्वीकृतियों को हम मानना कहते हैं। बदलने वाली एवं निरन्तर रहने वाली क्रियाओं को भी स्वीकार सकते हैं, मान सकते हैं। मानना भी जीवन की क्रिया है।

हम अनेक प्रकार की वनस्पतियों को पहचानते हैं, अनेक प्रकार के भवन, पत्थर, मिट्टी को भी पहचानते हैं। पहचानना में प एवं गुण प्रधान वस्तु है। दो मनुष्य को हम अलग–अलग उनके रूप के आधार पर पहचानते हैं। कुत्ते एवं गाय की बोली को सुनकर ही हम उन्हें अलग–अलग पहचान दे सकते हैं। उनके रूप को देखने की आवश्यकता नहीं होती। पहचानना भी जीवन क्रिया है।

हम आम के फल को तोड़कर खाते हैं। घर को लीप–पोत कर साफ करते हैं। वस्त्र को पहनते हैं। गन्दे होने पर धोकर सुखाते हैं। बड़ों का सम्मान एवं सेवा करते हैं। ये निर्वाह करना कहलाते हैं। यह भी जीवन की क्रिया है।

जीवन में जानना, मानना, पहचानना एवं निर्वाह करना ये चार प्रकार की क्रियाएं होती है। जीवन के अलावा अन्य वस्तुओं में केवल पहचानना एवं निर्वाह करना होता है।

# जीवन, मैं और शरीर मे संबंध

पाठ – 12

हम इसे समझ चुके हैं कि अपने आप होने वाली क्रिया एवं जानबूझ का होने वाली क्रिया प्रत्येक मानव में होती है। इन्हें हम क्रमशः शरीर व जीवन नाम देते है।

अब हम यह समझने का प्रयास करेंगे कि क्या इन दोनो प्रकार की क्रियाओं का आपस में कोई सम्बन्ध है ? क्या शरीर का प्रभाव जीवन पर पड़ता है ? क्या जीवन का प्रभाव शरीर पर पड़ता है ?

इसे समझने के लिए हमें अपने आप को ही जांचना होगा। किसी दूसरे व्यक्ति को जांचने कि आवश्यकता नहीं है।

श्वास लेना शरीर की क्रिया है। क्या हम इस क्रिया में कोई परिवर्तन कर सकते है। उत्तर है हॉ। हम श्वास की गति को बढ़ा सकते हैं, घटा सकते हैं। इस प्रकार हम यह समझते हैं कि शरीर पर जीवन का प्रभाव पड़ता है।

क्या हम शरीर में बहने वाले रक्त की गति को बदल सकते है। इसका उत्तर है हॉ। इसके लिए हम हाथ पैर को जोर–जोर से हिलायेंगे या दौड़ेंगे तो शरीर में रक्त बहने की गति बढ़ जाएगी।

क्या हम शरीर में पसीना लाने की गति में कोई परिवर्तन कर सकते हैं ?इसका उत्तर भी हॉ इसके लिए हमें आग जलाना होगा इससे पसीना आने की गति बढ़ जाएगी पंखा या कूलर चलाएं तो पसीना कम हो जाएगा। क्या हम शरीर में होने वाले पाचन क्रिया को तीव्र करने के लिए औषधि का सेवन करना पड़ता है। इसके बिना ऐसा होता नहीं है। अतः किसी निश्चित विधियों को जीवन समझकर ही शरीर को प्रभावित कर पाता है। अतः जीवन समझकर ही कार्य करता है। यह स्पष्ट होता है।

शरीर भी निश्चित विधि से प्रभावित होता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि शरीर एक व्यवस्था है। निश्चित विधि से कार्य करता है। इसमें परिवर्तन की विधि भी निश्चित है।

जब भी भूख लगती है तब हमें पता चलता है। इसी प्रकार प्यास, नींद का भी पता चलता है। प्यास, भूख, नींद ये शरीर के लिए है। ये जीवन को पता चलता है। इस प्रकार का प्रभाव जीवन पर पड़ता है। इस प्रभाव को पहचानकर जीवन कार्य करता है।

इस प्रकार जानबूझकर एवं स्वतः क्रियाएं साथ–साथ रहती है। जीवन व शरीर दोनों का प्रभाव एक दूसरे पर पड़ता है।

पाठ – 13

# दृष्टा

मानव को हम निद्रावस्था में विश्राम करते हुए देखते हैं। मानव जगे रहकर भी विश्राम करता है एवं जगे रहकर कार्य भी कर सकता है।

हम भूख, प्यास, निद्रा, ठंडी, गर्मी को पहचानते हैं एवं इसे सहने या इसके निराकरण का प्रयास करते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि जीवन शरीर का ध्यान रखता है। शरीर की आवश्यकता को पहचानता है एवं इसे पूरा करता है। जब हमें मच्छर काटता है तो उसे उड़ा देते हैं इससे स्पष्ट होता है कि जीवन शरीर का ध्यान रखता है।

अब हम निद्रावस्था का स्मरण करें। यदि निद्रावस्था में प्यास लगती है तो क्या करते हैं ? उत्तर है उठकर पानी पीते है। नींद में ठंड लगी तो उठकर कोई कपड़ा ओढ़ते हैं। मच्छर काटे तो मच्छर उड़ाते हैं एवं उस स्थान को सहलाते है। बिलकुल ऐसा ही जगे अवस्था में भी करते हैं। निद्रावस्था में किसी व्यक्ति को नाम लेकर पुकारने पर वह उठता है। क्या निद्रावस्था में व्यक्ति सुनता है ?

हम देखते है कि जागरण अवस्था की तरह ही जीवन निद्रावस्था में भी शरीर का ध्यान रखता है। अपने नाम एवं सम्बन्धों का ध्यान रखता है। अतः जीवन सोता नहीं है। जीवन निद्रावस्था में नहीं रहता। निद्रावस्था में तो शरीर रहता है। जीवन जागता ही रहता है। चाहे जागरण अवस्था हो या निद्रावस्था। जीवन हर समय शरीर का ध्यान रखता है। इसे हम कहते हैं कि जीवन शरीर का दृष्टा है। सम्बन्धों का दृष्टा है। एवं जानबूझकर करने वाले कार्यों का दृष्टा है।

दृष्टा का अर्थ है देखने और समझने वाला।

पाठ – 14

# रूप, गुण, स्वभाव, धर्म

आंखों से जो पहचान आता है। उसे रूप कहते हैं। उदाहरण के लिए हम एक गेंद को देखते है। उसका गोल आकार एवं रंग हमे स्पष्ट होता है। इसे रूप को पहचानना कहते हैं।

हम अपने माता जी और पिता जी को देखते है। दोनों का आकार अलग–अलग पहचानते हैं। यह अलग–अलग हम रूप के आधार पर पहचानते है। इसी प्रकार हम एक छोटे शिशु को देखते हैं। वर्ष के बाद पुनः उसे देखते है तो पाते हैं कि उसका शरीर बड़ा हो गया है। मुखाकृति में भी बदलाव आ गया है। इसी प्रकार हम अपने शिशुकाल के चित्र को देखकर भी समझते है कि हमारे शरीर का रूप बदलता रहता है। घर में लगे हुए छोटे पौधे का रूप भी बदल जाता है। इस प्रकार रूप समय के साथ बदलता रहता है।

हम सबने नीबू के फल को देखा है। नीबू के रस को यदि दूध में मिलाया जाता है तो क्या होता है। दूध फट जाता है। इसे नीबू का गुण कहते हैं। इसी नीबू के रस को तांबे या पीतल के बर्तन पर डालकर रगड़ा जाय तो वह बर्तन चमकने लगता है। चूने के घोल में यही रस डाले तो चूने का काटने वाला गुण समाप्त हो जाता है। इस प्रकार हम समझते है कि नींबू का रस अलग–अलग परस्परता में अलग–अलग प्रभाव देता है कि गुण परिवर्तनशील है। इस प्रकार रूप एवं गुण समय और स्थान के साथ बदलते रहते हैं।

रूप एवं गुण के अलावा स्वभाव एवं धर्म भी प्रत्येक इकाई में पाया जाता है। स्वभाव एवं धर्म निरन्तर एक जैसा रहता है। व्यवस्था में भागीदारी करना किसी इकाई की मौलिकता है। यह निरन्तर एक जैसा रहता है। पदार्थ अवस्था की सभी इकाईयां अनेक छोटे–छोटे कणों का संगठित रूप होते हैं। इनमें टूट–फूट होते रहते है। इस प्रकार ये निरन्तर संगठन विघटन क्रिया में रत रहते हैं। पूरे पदार्थ अवस्था का स्वभाव एक ही होता है :– संगठन–विघटन।

यदि पत्थर का एक टूकड़ा लेकर हम इसे कूटें तो यह छोटे–छोटे टूकड़ों के रूप में हो जाता है और अधिक कूटे तो बिलकुल महीन हो जाता है और बहुत अधिक देर तक कूटें तो क्या पत्थर का चूर्ण कूटते–कूटते समाप्त हो जाएगा ? नहीं यह समाप्त नहीं होता। इसी प्रकार कोयले को जलाने पर धुँआ निकलता है और कुछ राख बनता है। कोयला भी किसी भी तरह समाप्त नहीं होता। इसका रूप एवं गुण बदलता है। इसका अस्तित्व समाप्त नहीं होता। अस्तित्व पदार्थ अवस्था का धर्म होता है। धर्म का अर्थ है। किसी इकाई से विलगीकरण न होना, हमेशा बना रहना।

प्रकृति की प्रत्येक इकाई रूप गुण स्वभाव एवं धर्म होता है। यह चारों अवस्थाओं में होता है।

पाठ – 15

# जीने के चार आयाम

हम सभी मानव सोचते हैं। सोचना विचार करना भी कहलाता है। यह मनुष्य के जीने का एक आयाम है। हम सभी कुछ कार्य करते हैं। जैसे धान उगाना, सड़क बनाना, भवन बनाना, कपड़ा सीना आदि इसे हम व्यवसाय भी कहते हैं। यह भी हमारे जीने का एक आयाम है।

हम अन्य मानव के साथ बातचीत करते हैं। उनसे कई क्रियाएं सीखते है। कई बातें समझते हैं। साथ में उठना, बैठना, खेलना, सेवा करना मानव परिवार में एक अनिवार्य भाग है। यह व्यवहार कहलाता है। व्यवहार भी हमारे जीने का एक आयाम है।

जब हमारे कार्य एवं व्यवहार ठीक होते है। तब हम सुखी या तृप्त होते हैं। अच्छे विचारों से भी सुखी होते हैं। हमारे उपरोक्त तीनों आयाम, व्यवसाय, व्यवहार व विचार का फल सुख है। इसे अनुभव कहते हैं। यह जीने का एक और आयाम है।

इस प्रकार प्रत्येक मानव चार आयाम में जीता है। व्यवसाय, व्यवहार, विचार और अनुभव कोई भी इससे कम में नहीं जीता है।

इस पाठ में हम व्यवहार आयाम को समझने का प्रयास करेंगे

व्यवहार मुख्यतः दो प्रकार से होता है।

1. जिनसे हमारी अपेक्षा निश्चित नहीं रहती है। इसे सम्बन्ध कहते है। इनसे हम प्रायः राज मिलते है। या अधिक कहते हैं।

## पाठ – 15

2. जिनसे हमारी अपेक्षा निश्चित नहीं रहती है। इनसे कभी कभी मिलता है या किसी उत्सव के अवसर पर कोई व्यक्ति कुछ समय के लिए मिलता है यह सम्पर्क कहलाता है। सम्पर्क में व्यवहार करने के कुछ नियम होते हैं। सामान्य बोलचाल में इसे शिष्टाचार भी कहते हैं। सम्पर्क में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति को हमारे सामान मानव स्वीकार कर व्यवहार करते है। उनसे विश्वास एवं सम्मान का भाव सहित व्यवहार करते हैं। उन्हें समझने के लिए भी तत्पर रहते है। यह दयापूर्ण व्यवहार कहलाता है। इसे सामाजिक नियम भी कहते हैं।

सम्बन्ध में भी जीने के नियम होते है। सम्पर्क के जो नियम हैं वे सम्बन्धों में भी रहते ही हैं। इसके अलावा प्रत्येक सम्बन्ध में भिन्न–भिन्न अपेक्षा रहती है। उन्हें भी पूरा करना सम्बन्ध में जीने के नियम कहलाते हैं।

परिवार सम्बन्ध प्रधान व्यवस्था है। इसमें माता–पिता, भाई–बहन, दादा–दादी, पति–पत्नि सम्बन्ध होता है। प्रत्येक सम्बन्ध में अपेक्षा भिन्न होती है। जैसे हमें पिता से अच्छे कार्यों के लिए प्रेरणा एवं संरक्षण की अपेक्षा रहती है। यह अपेक्षा छोटे भाई–बहनों में नहीं रहती । उनसे सहयोग की अपेक्षा रहती है।

पाठ – 16

# समझना, सीखना, करना

माँ कहती है कि हाथ साफ करो, तो हम हाथ साफ करते हैं। अध्यापक जी कहते हैं लिखो तो हम लिखते है। यह करना कहलाता है। करने के लिए बहुत से कार्य हैं। जैसे स्थान करना, मंजन करना, कपड़े धोना, सायकल सुधारना, पुस्तकों को यथा स्थान रखना, भोजन पकाना, अन्न उगाना आदि करने में किसी दूसरे इकाई पर प्रभाव पड़ता है जैसे लिखने की क्रिया में कागज में रंग आ जाता है। पेन की स्याही कम हो जाती है।

अब एक दूसरे क्रिया पर विचार करते हैं जैसे हमें सायकल चलाना कैसे आया?हमें हिन्दी पढ़ना एवं लिखना कैसे आया? यह हमने सीखा। किसी को करते देखकर सीखा। किसी के सहयोग से सीखा। इसी प्रकार तैरना, भोजन बनाना, कपड़े सीना, भवन बनाना, सड़क बनाना, गाड़ी एवं इंजन बनाना ये सब कार्य हम सीखते है। सीखने में किसी क्रिया को कैसे करना है उसे सीखते है। उसमें भी पहले क्या करना है, उसके पश्चात् क्या करना है इसे सीखते है। उदाहरण के लिए कपड़े सीना है। उसका नाम लेते हैं। इसके पश्चात् कपड़े पर चिन्ह लगाते हैं। कपड़ा काटते हैं एवं सीलते हैं। यह क्रम है, यदि पहले ही सील लें तो क्या होगा ?ठीक नाप नहीं होगा।

सीखने की क्रिया पहले है इसके पश्चात् करना होता है। सीखने की क्रिया में हम देखते हैं कि सीखने की वस्तुएँ भी भिन्न–भिन्न है एवं इसे कई प्रकार से किया जाता है। जैसे भोजन बनाना कई प्रकार से होता है। हर प्रत्येक स्थान पर अलग–अलग ढंग से होता है। जैसे दक्षिण भारत का भोजन उत्तर भारत से कुछ भिन्न होता है। अफ्रीका एवं यूरोप के देशों में यह अलग ढंग से बनता है।

कुछ वस्तुएँ एवं क्रियाएँ ऐसी है जो समय एवं स्थान के साथ नहीं बदलती। जैसे पानी का बहना। पानी सदा ढाल की ओर बहता है। इससे विपरीत और नहीं। यह भारत को यूरोप, अमेरीका सभी स्थान पर एक जैसा ही रहता है। यह हर समय ऐसा ही रहता है। हजारों वर्ष पूर्व भी ऐसा ही था। आज भी ऐसा ही है। इसे हम सीखते नहीं हैं, करते नहीं हैं, समझते हैं। इसे नियम कहते हैं। नियम को समझा जाता है।

मानव मानव के बीच में व्यवहार के नियम होते हैं। उन नियमों में जीने पर दोनों पक्ष सुखी होते हैं। नहीं जीने पर दोनों पक्ष दुखी हो जाते हैं। हम सभी एक दूसरे के साथ विश्वास पूर्वक जीना चाहते हैं। स्नेह पूर्वक जीना चाहते है। जब विश्वास पूर्वक जीते हैं तब न्याय होता है। यह हमेशा एक जैसा होता है।

जो वस्तु निरन्तर एक जैसे रहते हैं जैसे स्वभाव एवं धर्म वे समझने की वस्तुएँ हैं।

पदार्थ अवस्था एवं प्राण अवस्था आपस में पूरक है। पदार्थ प्राण व जीव अवस्था भी आपस में पूरक है। ये सब मानव के भी पूरक है। से सभी व्यवस्था में हैं। यदि हम पूरकता को समझे बिना कार्य करते हैं तो गलती होती है।

अतः समझना सीखना एवं करना ये मानव के लिए अनिवार्य है।

पाठ – 17

# उपयोगिता मूल्य

चावल से हमारे शरीर का पोषण मिलता है। हम चावल खाते हैं, तो हमारी भूख मिटती है और शरीर भी पुष्ट होता है।

आज से हजारों साल पहले भी मानव चावल खाता रहा है। उस समय एक किलो चावल एक परिवार के पॉच लोगों की आवश्यकता के लिए पर्याप्त रहा। उससे पोषण भी होता था। आज के दिन भी एक किलो चावल उसी तरह के परिवार के पाँच लोगों की आवश्यकता और पोषण के लिए पर्याप्त है। इसका मतलब है कि चावल की पोषण शक्ति स्थिर है। इस पोषण शक्ति को हम चावल का उपयोगिता मूल्य भी कहते हैं। हमें यह दिखता है कि चावल का उपयोगिता मूल्य स्थिर है। इसी तरह हजारों सालों से दूध, गेहूँ, आम, नीम का उपयोगिता मूल्य हमेशा ही बना रहा है। इसमें हमें यह समझ में आता है कि वस्तु की उपयोगिता स्थिर है। इसी तरह हजार सालों पहले लोहे की जो उपयोगिता थी, आज भी वही है। सौ साल पूर्व 1 लीटर दूध पचास पैसे में मिलता था। आज वहीं एक लीटर दूध बीस रू. में मिलता है। रूपयों में जो नापते हैं उसे हम कीमत कहते हैं। जैसे दूध की कीमत बीस रूपये लीटर है। दूध का उपयोगिता मूल्य शरीर के पोषण के अर्थ में है। यह मूल्य और उसकी कीमत अलग–अलग चीजें हैं। मूल्य हमेशा स्थिर होता है, लेकिन कीमत बदल सकती है।

पाठ – 18

# आवश्यकता से अधिक उत्पादन

मानव शरीर और जीवन का संयुक्त रूप शरीर की शक्ति सीमित है। जीवन की शक्ति अक्षय है। शरीर की आवश्यकता–भोजन वस्त्र, आवास है। अपनी भूख से अधिक भोजन नहीं कर पाते, यदि किसी लालच वश ऐसा कर भी लें तो शरीर अस्वस्थ हो जाता है। शरीर की आवश्यकता सीमित है।

जीवन की आवश्यकता निरन्तर है। जीवन निरन्तर सुखी होना चाहता है। जीवन निरन्तर विश्वास के वातावरण में जीना चाहता है। जीवन निरन्तर सम्मान चाहता है। यह समझने वाला जीवन ही है। इसी प्रकार शरीर की आवश्यकता सीमित है।

आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए जीवन शरीर के साथ कार्य करता है, जीवन शरीर से कार्य कराता है, जीवन स्वयं कार्य को समझना है। जीवन और शरीर मिलकर कार्य करते हैं, जबकि आवश्यकता केवल शरीर की है। जीवन अक्षय शक्ति सम्पन्न है, अतः शरीर की आवश्यकता पूरी की जा सकती है। प्रकृति पर ध्यान देकर हम समझ चुके हैं कि पदार्थ, प्राण एवं जीव अवस्था, मनुष्य से बहुत अधिक है। मनुष्य के शरीर की आवश्यकता इन्हीं से पूरी होती है। अतः प्रकृति में भी, मनुष्य की आवश्यकता पूरी होने की व्यवस्था है।

पाठ – 19

# मानव शरीर

मानव शरीर कई तंत्रों से बना होता है। जैसे पाचन तंत्र, उत्सर्जन तंत्र, अस्थि या कंकाल तंत्र, श्वसन तंत्र, हृदय एवं रक्त तंत्र, मस्तिष्क तंत्र।

पाचन तंत्र द्वारा भोजन पचाने का कार्य होता है।

उत्सर्जन तंत्र द्वारा शरीर से अनावश्यक द्रव्यों को मूल–मन्त्र एवं पसीने के रूप में बाहर निकाला जाता है। अस्थि तंत्र द्वारा शरीर का ढाँचा स्थिर बना रहता है। श्वसन तंत्र द्वारा शरीर के लिए उपयोगी प्राण वायु रक्त में पहुँचती है एवं अनुपयोगी वायु बाहर निकल जाती है। हृदय एवं रक्त तंत्र द्वारा सम्पूर्ण शरीर में शुद्ध रक्त पहुँचकर पोषण होता है।

मस्तिष्क तंत्र द्वारा पूरे शरीर का नियंत्रण होता है। यह नियंत्रण मुख्यतः दो प्रकार का होता है।

1. क्रियावाही तंत्र
2. ज्ञानवाही तंत्र

क्रियावही तंत्र द्वारा स्वतः या अनैच्छिक क्रियाओं का नियंत्रण होता है, जिसमें श्वसन क्रिया, हृदय की धड़कन एवं रक्त का परिसंचरण, शीत–ग्रीष्म के प्रभाव से कंपकंपी, पसीना निकलना आदि होता है। भोजन का पाचन एवं निष्कासन, उत्सर्जन द्वारा मूत्र निकलना भी इसी तंत्र का भाग है। यह मुख्य रूप से शरीर व्यवस्था कहलाती है। यह क्रियाएं क्रम से एवं समय से होती है। अतः नियमित है। इसी कारण हमें समय पर भूख, प्यास एवं निद्रा आती है।

## पाठ – 19

ज्ञानवाही तंत्र मुख्य रूप से शरीर के विभिन्न अंगों, अवयवों एवं ज्ञानेन्द्रियों से सूचना के आदान प्रदान के लिए जिम्मेदार होता है। जैसे जीभ पर कोई खाद्‌य पदार्थ रखने पर जीभ व उस पदार्थ के बीच कोई क्रिया होती है। वह प्रभाव मस्तिष्क तक पहुँचता है। उस खाद्‌य पदार्थ का स्पर्श जीभ पर हुआ, वह स्पर्श भी मस्तिष्क तक पहुँचता है। मस्तिष्क के द्वारा जीवन उन सूक्ष्म परिवर्तनों को पहचान लेता है, स्मरण रखता है एवं आवश्यकतानुसार पुनः पैदा भी करता है। अतः जीवन के अनुसार मस्तिष्क कार्य करता हुआ, संकेतों को इन्द्रियों तक पहुँचता है। अतः जीवन एवं शरीर के बीच समन्वय के लिए मस्तिष्क के ज्ञानवाही तंत्र का प्रयोग होता है।

जब हम इमली को देखते है, तो लालच आता है। मुँह में लार आती है। इसी प्रकार क्रोधित होने पर मुँह कड़वा होता है, दुःखी होने पर ऑखों में आँसू आते है। लालच, क्रोध, दुःख ये सब जीवन में होता है। जीवन के अनुसार मस्तिष्क तंत्र कार्य करता है। मस्तिष्क के अनुसार विभिन्न ग्रंथियाँ (रस ग्रंथियाँ) कार्य करती हैं। रस ग्रंथियों के कारण लार आदि प्रभाव भी होते हैं। ज्ञानवाही तंत्र एवं क्रियावाही तंत्र को सम्मिलित रूप में मस्तिष्क तंत्र या मेधस तंत्र भी कहते हैं।

पाठ – 20

# विहार

शरीर को स्वस्थ रखने के लिए हम अनेक प्रकार के क्रिया–कलाप करते हैं। भोजन के अलावा लगभग सभी क्रिया–कलापों को सम्मिलित रूप में विहार करते हैं। विहार में विश्राम करना, विश्राम करने के तरीके, टहलना, खेल–कूद करना, दौड़ना एवं अन्य व्यायाम करना, स्नान एवं शरीर की सफाई करना, मालिश करना आते हैं।

विहार करने का मुख्य उद्देश्य शरीर को स्वस्थ रखता है। सभी व्यायाम एवं खेल का उद्देश्य यही है। कई बार भूलकर हम जीवन की तृप्ति या मनोरंजन के लिए खेल–कूद एवं व्यायाम करते हैं। ऐसी स्थिति में शरीर की क्षमता से अधिक कार्य या गति करते हैं। इससे शरीर में चोट लग जाती है। इसी के साथ खेलकूद में जीत–हार की भावना होने से स्पर्धा एवं ईर्ष्या होती है, जो जीवन की अतृप्ति या दुःख का कारण होता है। हर ऋतु में तापमान, वायु में आद्रता, वर्षा भिन्न–भिन्न होती है। उस स्थिति में शरीर को स्वस्थ रखने के लिए अलग विधि अपनाते हैं अर्थात् विहार में बदलाव करते हैं। इसे ऋतु चर्या भी कहते हैं। जैसे ग्रीष्म ऋतु में हमारे राज्य में अत्यधिक गर्मी पड़ती है। दिन भर तेज धूप एवं गर्म वायु चलती है। इसे लू कहते हैं। ऐसे समय में घर में रहते हैं। बाहर निकलना हो तो सिर को, कान को बांधकर निकलते हैं। ज्यादा श्रम के कार्य बंद करते हैं। व्यायाम बंद करते है, या उसमें कमी लाते हैं। ठंडे पानी से स्नान करते है। दो या तीन बार भी स्नान करते हैं, पेड़ों की छाया में बैठते है। रात्रि में एवं प्रातः उठकर भ्रमण करते हैं।

## पाठ – 20

शीत ऋतु में यहाँ सूखी (शुष्क) हवा चलती है। कभी–कभी शीत लहर चलती है। इससे चमड़ी, चेहरे, होंठ फट जाते हैं। इससे बचने के लिए तेल मालिश करते है या घी या अन्य चिकनाई को शरीर में लगाते हैं। सिर में तेल लगाते है। तेल लगाने से शीत का प्रभाव शरीर पर कम पड़ता है। स्नान के लिए गुनगुने जल का प्रयोग करते हैं। बाहर निकलने पर ऊनी कपड़े से सिर एवं सीने को ढकते है। इन दिनों अधिक श्रम के कार्य करते है। दौड़ना आदि व्यायाम अधिक करते हैं।

विहार में स्वच्छता एक प्रमुख भाग है। कान, आँख, नाक की सफाई, दांत व मसूड़ो की सफाई, नाखून काटना, बालों को काटना, शरीर को स्नान द्वारा साफ करना, स्वच्छ वस्त्र धारण करना, शरीर को स्वस्थ बनाने में हितकर होता है।

विश्राम एवं निद्रा, विहार का एक अनिवार्य भाग है। लगातार श्रम करना स्वास्थ्य के लिए अनुकुल नहीं होता। बीच–बीच में विश्राम करना आवश्यक है। रात्रि में निद्रा आवश्यक है।

सूर्योदय से पूर्व सोकर उठना शरीर को ताजगी एवं स्फूर्ति देता है। सूर्योदय के बाद उठने पर आलस्य बढ़ता है, शरीर में सुस्ती भी आती है। शरीर की सफाई के कार्य में भी बाधा होती है।

पाठ – 21

# समय

आप प्रतिदिन प्रातः 7:00 बजे विद्यालय आते हैं एवं दोपहर 12:00 बजे विद्यालय का अवकाश होता है। रात्रि 9:00 बजे से आप सो जाते हैं। प्रातः 6:00 बजे आप उठते हैं। ये सभी कार्य समय पर होते हैं। आपको समय का पता कैसे चलता है ? घड़ी का समय से क्या संबंध है ? घड़ी का समय कौन निर्धारित करता है ?

समय को समझने के लिए हम पहले दिन और रात्रि को समझेंगे। प्रतिदिन प्रातः काल से सूरज उठता है एवं सायं काल सूरज छिप जाता है। सूरज का उगना ही प्रातः काल कहलाता है। जब तक सूर्य निकला रहता है, उसे दिन कहते है। सूरज के छिप जाने के बाद का समय रात्रि कहलाता है, ऐसा प्रतिदिन होता है।

सूर्योदय से दूसरे दिन के सूर्योदय को एक दिन रात कहते हैं। आज कल एक दिन रात को 24 बराबर भागों में बांट दिये हैं। प्रत्येक भाग का एक घंटा कहते हैं। प्रत्येक घंटे को 60 भाग में बांटे है। इसके प्रत्येक भाग को एक मिनट कहते है। इसी प्रकार मिनट के भी 60 भाग किये हैं। प्रत्येक भाग 1 सेकण्ड कहलाता है। घड़ी में समय का निर्धारण इसी प्रकार है।

आज से सैकड़ों वर्ष पूर्व हमारे देश में एक दिन रात को 60 भाग में बांटे थे। प्रत्येक भाग एक घटी कहलाता था। प्रत्येक घटी को 60 भाग में बांटे थे, उसे पल कहते थे। इसी प्रकार एक पल को 60 भागों में बांटे थे, उसे विपल नाम दिया गया था। इसी प्रकार एक दिन–रात को हम कई प्रकार से बांट सकते हैं।

दिन–रात कैसे होते हैं ? धरती अपने धूरी पर एक चक्कर घूमती है, इसे एक दिन–रात कहते हैं। आधा दिन–रात का अर्थ अपने धूरी पर धरती ने आधा चक्कर लगाया। एक चक्कर के 24 वें भाग को एक घंटा कहते हैं।

पृथ्वी का घूमना एक क्रिया है। हम क्रिया को पहचानते हैं। क्रिया के किसी अंश या हिस्से को भी पहचानते हैं। क्रिया से ही हम समय को नापे है। कोई क्रिया या अंश, क्रिया का अंश ही समय कहलाता है।

1 वर्ष का अर्थ है धरती ने सूर्य का एक चक्कर लगाया, किसी व्यक्ति की आयु 50 वर्ष है, इसका अर्थ यह है कि व्यक्ति के जन्म के पश्चात् धरती ने सूर्य के 50 चक्कर लगाये हैं।
अतः क्रिया की अवधि ही समय या काल है।

पाठ – 21

# इतिहास

आज से पहले घटी हुई घटनाओं का इतिहास कहते है। जैसे आज हम देखते हैं कि लोगों के पास मोबाईल फोन है, वाहन है, वायुयान–ट्रेन में लोग यात्रा करते हैं। कम्प्यूटर से अनेक कार्य होते हैं। दूरदर्शन से घर बैठकर हम पूरे विश्व का समाचार देख सकते हैं। आज से 300 वर्ष पूर्व इनमें से कोई भी वस्तु नहीं थी। लोग बैलगाड़ी घोड़े हाथी पर यात्रा करते थे। अधिकांश लोग पैदल यात्रा करते थे। प्रकाश के लिए वनस्पति तेल से दीप जलाते थे। इनका प्रकाश बहुत कम होता था अतः सूर्यास्त होते ही लोग अपना कार्य समेटकर विश्राम करते थे। प्रातः सूर्योदय के पूर्व उठकर कार्य प्रारंभ कर देते थे। पंखा कूलर वातानुकूलन के लिए यंत्र भी नहीं थे।

इस समय के पहले सोचने पर अन्य भिन्न स्थिति दिखती है। अतः हम मानव के प्रारंभ पर ध्यान देंगे, जहाँ मानव वन में रहता था। इसे जंगल युग कहते थे। वन में हिंसक पशु विषैले कीट के आक्रमण का भय था। वर्षा, शीत, ग्रीष्म में वातावरण की पीड़ा थी। आँधी, बिजली गिरने, भूकम्प से भी भय था। वन के फल, पत्ते एवं कन्दमूल ही भोजन थे। वन के फल, पत्ते एवं छाल से ही वस्त्र का कार्य करते थे। इसी के साथ वन में दूर मानव के अन्य समूह भी रहते थे। उनकी बोली भिन्न होती थी। खाने–पीने का ढंग भिन्न होता था। कई बार उन्हें अपना मित्र मानकर एवं कई बार शत्रु मानकर व्यवहार करते थे। इस युग में मानव लगभग वन्यप्राणी की तरह जिया। इस समय में उपलब्धि के रूप में देखे तो मानव इतने भीषण प्रतिकूलता में जी गया। अपने भोजन को पहचाना, कुछ औषधियों को पहचाना, वस्त्र की सामान्य आवश्यकता को पूरा कर पाया, मुख्य रूप में पशुभय, प्राकृतिक भय एवं दूसरे मनुष्य के क्रूरता के भय से भयभीत होकर जीता रहा। भोजन का भी संकट बना रहा।

इन्हीं परिस्थिति में जीते समय भोजन के प्रबंध के लिए कृषि कार्य का विकास किया। वन को काटकर मैदान बनाकर रहना प्रारंभ किए ताकि वन्यपशु को दूर से ही देख सकें। मकान बनाना प्रारंभ हुआ। पूर्व के सभी कार्यों में प्रगति हुई। पशु भय काफी कम हुआ, प्राकृतिक भय कुछ कम हुआ। इन्हें कबीला या ग्राम कहा गया, परन्तु इस समय अन्य कबीले या ग्राम के मनुष्य दूसरे ग्राम के मनुष्यों की वस्तुओं को हड़पना, युद्ध करना जैसी घटनाएं बढ़ गई अर्थात् मानव के क्रूरता का भय बढ़ गया।

मानव के भय से बचने के लिए राजायुग का प्रारंभ हुआ। मानव के जीने के नियम बने, युद्ध कौशल का अभ्यास प्रारंभ हुआ। हथियार का निर्माण प्रारंभ हुआ। इसी समय धातु की पहचान हो गई। पत्थर एवं लकड़ी के स्थान पर धातु आने से कृषि कार्य, पशुपालन, पशुओं के द्वारा यातायात सब बढ़ गया, आसान हो गया। इसमें गति बढ़ गई, हथियार घातक हो गए, पशुभय लगभग समाप्त हो गया। प्राकृतिक भय काफी कम हुआ, मानव का मानव से भय बढ़ गया।

## पाठ – 21

राज युग में धातु का आविष्कार होने से जीने के सभी आयाओं में गति बढ़ी। भाषा, शिक्षा, संस्कृति, भोजन के तरीके, व्यापार, वस्त्र में पहले से अधिक वृद्धि हुई। समाज में लोगों के मिलने में गति बढ़ी। दूर–दूर तक यात्रा होने लगी, अधिक लोग यात्रा करने लगे। इन सब पर राजा का नियंत्रण रहा, राजा को युद्ध के लिए सेना एवं हथियारों की आवश्यकता पड़ी, लोगों से कर लिए जाने लगे, इसी के साथ राजा के द्वारा अत्याचार एवं शोषण भी होने लगा। एक देश दूसरे देश के साथ युद्ध करने लगे। युद्ध करना, विरोधियों को मारना, श्रेष्ठ माना जाने लगा।

लोग धीरे–धीरे युद्ध से एवं राजा के शोषण से पीड़ित हुए। इस समय तक राजा बनने के दो ही तरीके थे। प्रथम राजा के संतान राजा बनते थे एवं द्वितीय युद्ध में राजा को पराजित करने या मारने वाला व्यक्ति राजा बनता था। राजा के इच्छा से देश चलता था। इस मनमानी से बचने के लिए गणतंत्र प्रणाली आई। इसमें साधारण जनता को चुनाव के द्वारा देश के सर्वोच्च पद पर पहुँचने का अवसर मिला।

पश्चिम देशों अर्थात् यूरोप, अमेरिका में पहले इसका प्रयोग हुआ। इसी समय विज्ञान के बहुत सारे आविष्कार हुए – जैसे विद्युत, खनिज, ईंधन, जैसे डीजल, पेट्रोल, मिट्टी का तेल, कोयला, मशीनें, ईंजन, आधुनिक हथियार जैसे बंदूक, टैंक, वायुयान, खतरनाक रसायनिक हथियार आदि इन सबके कारण गति में बहुत वृद्धि हुई। सभी प्रकार के उत्पादन पहले से कई गुणा बढ़ गए। यात्राएं बहुत शीघ्र होने लगे। लोग पूरी दुनिया में जाने लगे। इन सबके बावजूद युद्ध पहले से अधिक बढ़ा। भयंकर युद्ध हुआ। कुछ ही मिनट में लाखों लोगों को मार डाला गया। इसके साथ ही प्राकृतिक संतुलन बिगड़ गया। वर्षा, शीत सभी में परिवर्तन हो गया।

आज इस स्थिति में मानव का मानव से भय कई गुणा बढ़ गया है। प्रकृति पर नियंत्रण करने के प्रयास में प्राकृतिक संतुलन और नियंत्रण भी गड़बड़ा गया है। अनेक प्रकार के सुविधा एवं भोग के सामान बने हैं। सुन्दर, समतल सड़के, हवाई यात्रा, अंतरिक्ष एवं दूसरे ग्रहों की यात्रा भी सुलभ है। परन्तु मानव आज भी सुखी नहीं हुआ है। आज मानव मानव के बीच सौहार्द स्थापित करना प्रमुख आवश्यकता एवं कार्यक्रम के रूप में उभरा है।

पाठ – 23

# सुखी, सुख बॉटता है

आपका मित्र आपसे पेन्सिल मांगता है। आपके पास है तो आप उसे पेन्सिल दे देते है। आप दूसरों को वही वस्तु दे सकते हैं जो आपके पास है जो वस्तु आपके पास नहीं है आप उसे नहीं बाँट सकते।

अब निम्नलिखित दो उदाहरणों पर विचार करते हैं। प्रथम है आज माँ बहुत प्रसन्न है। उनका स्वास्थ्य अच्छा है। उन्होंने अपने सारे कार्य समय पर पूरे कर लिए हैं। वह सबसे प्रसन्नता से बातें कर रही है। उनसे बात करके सबकों अच्छा लग रहा है। द्वितीय उदाहरण है मौसी आपके घर आई है। यात्रा के थकावट के कारण उनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं है। सिर में चक्कर आ रहे हैं। उनका एक सामान ट्रेन में छूट गया उसमें बहुत सारे आवश्यक सामान थे। मौसी चिड़चिड़ाई सी लग रही है। बातें करने में मन नहीं लग रहा है। ठीक से उत्तर नहीं दे रही है। उनकी स्थिति देखकर आप सबकों भी अच्छा नहीं लग रहा है।

प्रथम उदाहरण में देख रहें हैं कि माँ के पास जो है उसे बाँटा। माँ प्रसन्न हैं इसलिए सबसे प्रसन्नता से बात कर रही है। सबको अच्छा लग रहा है। मौसी के पास जो है वह उन्होंने बाँटा वह असन्तुष्ट है तो उनके बातें व व्यवहार से हमको अच्छा नहीं लग रहा है। इससे यह स्पष्ट होता है कि जिसके पास जो होता है वह उसी को बाँटता है।

आपके पास 40 सन्तरे हैं आप अपने एक मित्र को 2 संतरे दे देते हैं। कुछ समय पश्चात् कक्षा के सभी साथियों के साथ सभी संतरे बांटकर खा लेते हैं। सारे सन्तरे समाप्त हो गए। क्या अब आप किसी को सन्तरे दे सकते है ?नहीं।

आज विद्यालय में आप प्रसन्न हैं। कल के सभी गृहकार्य आप पूरे कर चुके हैं। समय पर कक्षा में आए हैं। सारे सहपाठी आपसे बहुत प्रसन्न हैं। आप सभी दिन प्रसन्न रहते है। विद्यालय से घर पहुंचने पर भी आप की प्रसन्न्ता वैसे ही बनी रहती है। हमारा सुख बाँटने पर कम नहीं हो रहा है। समाप्त नहीं हो रहा है। इससे यह स्पष्ट होता है। निरंतर बाँटने की वस्तु सुख ही है। इस प्रकार सुखी सुख बाँटना है एवं दुखी दुःख बाँटता है।

पाठ – 24

# सभ्यता

मनुष्य इस धरती पर हजारों वर्षों से रहता आया है। इन वर्षों में मानव के जीने का ढंग बदला है। मनुष्य के उपयोग की वस्तुएँ भी बदली है। अनेक नई–नई वस्तुओं के तरीके भी बदले हैं। भाषा भी बदली है। इन वर्षों में मनुष्य की मान्यताएँ भी बदली है।

मनुष्य की जो मान्यता है। उसमें अच्छे और बुरे को पहचाना गया। समय के साथ ये मान्यताएँ भी बदलती गई। जैसे पहले मनुष्य को दास बनाकर रखा जाता था और जिसके पास अधिक संख्या में दास होते थे, उसे सभ्य माना जाता था। आज कल दास रखना असभ्यता एवं अपराध माना जाता है। सभी मानव को एक समान समझदारी एवं सभ्यता माना जाता है।

हमें यह समझ में आया है कि माता–पिता और गुरूजनों ने हमें समझने की प्रेरणा दी है एवं शिक्षा दी है। शिक्षा से ही मनुष्य सुखी होता है। इसलिए हम माता–पिता और गुरू के प्रति कृतज्ञ होते हैं। इनका गुणगान करते हैं। आवश्यकता के अनुसार इसकी सेवा करते हैं। समारोह आयोजित कर इनका सम्मान करते हैं। यह मानव सभ्यता कहलाती है। इसी प्रकार शिशु जो अभी खेलना, बोलना नहीं सीखे हैं। उन्हें लगातार शिक्षा देते है। अच्छी बातें सिखाते हैं। अच्छे कार्य एवं व्यवहार सिखाते हैं ताकि ये बड़े होकर अच्छाई को समझे सीखें एवं करें। आगे पीढ़ी को सिखाएँ ताकि यह सभ्यता बनी रहे।

मानव सभ्यता में कुछ कार्यक्रम अनिवार्य रहते है, उनमें से कुछ निम्नलिखित है–

1. शिशु पालन
2. शिक्षा
3. शोध एवं अनुसंधान
4. वस्तुओं का सदुपयोग
5. जल का संरक्षण एवं सदुपयोग
6. अपशिष्ट पदार्थ एवं मलमूत्र का प्रबंधन
7. स्वास्थ्य के लिए आहार पद्धति
8. रोग निवारण के लिए चिकित्सा
9. वस्तुओं के उत्पादन के लिए श्रम का महत्व
10. परिवार के स्तर पर सेवा
11. अतिथियों का सत्कार

पाठ – 25

# उत्सव

मानव समाज में उत्सव धूमधाम से मनाए जाते है। पूरे विश्व में विभिन्न अवसरों पर विभिन्न उत्सव मनाए जाते हैं। उत्सव मनाने का ढंग पूरे विश्व में अलग–अलग है। इसे संस्कृति कहा जाता है।

उत्सव मनाने के कई अवसर होते हैं। इनमें से कुछ प्राकृतिक होते हैं एवं कुछ मानव संबंध के आधार पर होते हैं। प्राकृतिक उत्सव मुख्य रूप से ऋतुओं के आधार पर होते हैं। ऋतुएँ मुख्यतः सूर्य पर आधारित होती है।

ग्रीष्म ऋतु में सूर्य खूब सबेरे दिखता है एवं सायं देर से दिखाई देना बंद होता है। इससे दिन बड़े हो जाते हैं, वातावरण गर्म हो जाता है। लोग गर्मी से पीड़ित होने लगते हैं। पेड़–पौधे सूखने लगते हैं, घास तो सूख ही जाती है। तालाब, नदी आदि जलाशय सूखने लगते हैं। पानी की कमी से लोग व्याकुल होने लगते हैं। अधिक गर्मी से प्यास अधिक लगती है, पसीना अधिक आता है एवं स्नान की आवश्यकता भी बढ़ जाती है। लोग वर्षा की प्रतीक्षा करने लगते हैं। जैसे ही वर्षा आती है। गर्मी दूर हो जाती है। ठंडक आ जाती है। लोग प्रसन्न होते हैं। धरती में हरियाली छाने लगती है। जलाशय भरने लगते हैं। ऐसे समय कोई एक दिन निश्चित कर लोग एक स्थान पर मिलते हैं एवं आगे का कार्यक्रम तय करते हैं क्योंकि वर्षा के प्रारंभ से खेतों की जुताई, बीज बोना जैसे कार्यक्रम का अनुकूल समय आ जाता है। लोग साथ–साथ बैठकर खाते पीते हैं।

अपनी खूशियों को गीतों एवं गद्य के माध्यम से व्यक्त करते हैं। वर्षा ऋतु के कार्यों का स्मरण, इस ऋतु में स्वस्थ रहने के लिए आवश्यक आहार एवं विहार पर चर्चा करते हैं। गीतों द्वारा भी अपनी खुशियों को व्यक्त करते हैं। इन्हें लोकगीत कहा जाता है।

## पाठ – 25

स्थान भिन्नता के आधार पर वर्षा ऋतु प्रारंभ होने का समय बदलता है। जैसे केरल प्रदेश में एक जून से वर्षा प्रारंभ हो जाती है एवं हमारे छत्तीसगढ़ में पंद्रह जून से वर्षा प्रारंभ होती है। इसी प्रकार कई जगह दिन भर वर्षा होती है तो कई जगह कम होती है। कई जगह विशेषकर रेगिस्तान में पूरी वर्षा ऋतु में चार–पांच बार ही वर्षा होती है। इस प्रकार वर्षा ऋतु की लम्बाई भी अलग–अलग होती है अतः सभी स्थानों पर रहने के आहार के, विहार के तरीके बदले हुए रहते हैं, वे सभी अपनी ऋतु के अनुसार होते है। इसलिए हमें इन गीतों एवं उत्सव मनाने के तरीकों में विभिन्नता दिखाई पड़ती है।

वर्षा ऋतु के अन्त में मौसम अनुकूल होता हो जाता है। वर्षा काफी कम हो जाती है। गर्मी दूर हो जाती है। फसलों में फूल आने लगते हैं। वातावरण में फूलों की, फलों की सुगन्ध भरने लगती है। पशु–पक्षी इन फसलों को खाने एवं नुकसान पहुँचाने के लिए पहुँचते हैं। इस समय सभी लोग पुनः जमा होते है एवं अपने अगले कर्तव्यों को निश्चित करते है। फसल उत्पादन का अनुमान लगाकर प्रसन्न होते है एवं आगे की योजनाएं बनाते है। गीतों, नृत्यों के माध्यम से इन भावों को व्यक्त करने का प्रयास करते हैं। साथ–साथ बैठकर भोजन करते है। यह शरदोत्सव कहलाता है। सभी कृषि प्रधान भू–भागों में इसे खूब धूमधाम से मनाया जाता है। उत्सव मनाने के दिन एवं तरीके स्थान भेद से बदलते हैं।

इस प्रकार वर्ष भर में अनेक प्राकृतिक घटनाएँ होती है। इन घटनाओं में खुशी से जीने एवं स्वस्थ रहने की प्रेरणा, शिक्षा एवं कर्तव्यों को निभाने की एक मानव सहज कार्यप्रणाली को उत्सव कहा जाता है।